तरुचिंतन
2018

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

(पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)

देहरादून (उत्तराखण्ड)

संरक्षक

डॉ. सुरेश गैरोला, भा.व.से.

महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

देहरादून

सम्पादक मंडल

प्रधान सम्पादक

श्री विपिन चौधरी, भा.व.से.

उपमहानिदेशक, (विस्तार)

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

सम्पादक

डॉ. शामिला कालिया

सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार प्रभाग),

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

सहायक सम्पादक

श्री रमाकान्त मिश्र

सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी (मीडिया एवं विस्तार प्रभाग)

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

प्रकाशक

मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्

डाकघर, न्यू फॉरेस्ट

देहरादून – 248006 (उत्तराखण्ड), भारत

डॉ. सुरेश गैरोला, भा.व.से.

महानिदेशक

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्,

देहरादून

संरक्षक की कलम से...

भारत एक बहुभाषी देश है, जिसमें 22 से अधिक प्रमुख भाषाएं, 13 लिपियां एवं 730 बोलियां प्रचलन में हैं। इतनी भाषिक विविधता वाले देश को एक संपर्क भाषा की आवश्यकता रहती है। स्वतंत्रता से पूर्व अंग्रेजी राजकाज की भाषा थी और स्वतंत्रता के उपरान्त एकाएक इसे विस्थापित कर किसी नई भाषा को लागू करना संभव नहीं था। अतः संघ सरकार के कार्यों हेतु अंग्रेजी प्रचलन में रही और शनैः–शनैः इसके स्थान पर बहुत बड़े भू–भाग पर बोली और समझी जाने वाली भाषा हिंदी को लाने के लिए 14 सिंतबर 1949 को हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया और इसके उपरांत इसको शासकीय प्रयोगों के अनुकूल करने तथा सटीक अभिव्यक्ति सक्षम करने के उद्देश्य से अनेक कदम उठाये गए जिनमें प्रशासनिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एवं हिंदी शब्दावली का निर्माण, प्रशासनिक एवं विधि साहित्य का हिंदी में अनुवाद, सरकारी कर्मचारियों का हिंदी प्रशिक्षण, हिंदी टाइपराइटरों एवं अन्य यांत्रिक साधनों की व्यवस्था शामिल है। यही नहीं, एक ओर राजभाषा हिंदी की क्षमता में अभिवृद्धि की जा रही थी वहीं, दूसरी ओर राजभाषा अधिनियम, 1963 तथा राजभाषा नियम, 1976 आदि के द्वारा राजभाषा हिंदी की वैधानिक स्थिति को भी सुदृढ़ किया जा रहा था।

इस प्रकार राजभाषा अधिनियम, 1963 के अनुसार राजभाषा हिंदी संघ सरकार के शासकीय कामकाज की भाषा है। इसके प्रयोग को बढ़ाने के लिए राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार प्रत्येक वर्ष विभिन्न मदों के लक्ष्य निर्धारित करता है और सभी केन्द्र सरकार के कार्यालयों से उनकी प्राप्ति सुनिश्चित करने को निदेशित करता है। क्योंकि भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली के अंतर्गत एक स्वायत्त परिषद् है। इसलिए सभी राजभाषा नियम परिषद् पर भी लागू होते हैं। अतः परिषद् द्वारा सभी निर्धारित कार्यक्रमों यथा राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक, प्रशिक्षण कार्यशालाओं एवं हिंदी पखवाड़ा का आयोजन, अधीनस्थ कार्यालयों का निरीक्षण आदि तो पूर्ण समर्पण के साथ किए ही जाते हैं, परिषद् में राजभाषा हिंदी में लिखने–पढ़ने का वातावरण बनाने के उद्देश्य से एक वार्षिक पत्रिका 'तरूचिंतन' का प्रकाशन भी किया जाता है।

'तरूचिंतन' में परिषद् की राजभाषा हिंदी से संबंधित गतिविधियों का विवरण तो प्रकाशित होता ही है साथ ही परिषद् के अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं अन्य कार्मिकों तथा उनके परिजनों द्वारा रचित वानिकी और अन्य जन–रूचि के विषयों पर सरल भाषा में सुरूचि पूर्ण लेख आदि प्रकाशित किए जाते हैं।

मैं 'तरूचिंतन' के वर्तमान अंक के प्रकाशन के लिए किए गए प्रयासों हेतु श्री विपिन चौधरी, उपमहानिदेशक (विस्तार), विस्तार निदेशालय, भा.वा.अ.शि.प. को तथा पत्रिका के सभी रचनाकारों को हार्दिक बधाई देता हूँ।

सुरेश गैरोला

(डॉ. सुरेश गैरोला)

श्री विपिन चौधरी, भा.व.से.

उपमहानिदेशक, (विस्तार),
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

प्रधान संपादक की कलम से...

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून की देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में अवस्थित 9 संस्थानों एवं 5 केन्द्रों के माध्यम से अखिल भारतीय उपस्थिति है। हिंदी भाषा में एक प्रभावी शासकीय तथा साथ ही जन–सम्प्रेषण का माध्यम होने के साथ–साथ समस्त राष्ट्र को एक सांस्कृतिक एवं भावनात्मक सूत्र में बांधने की क्षमता है। परिषद् के संस्थानों और केन्द्रों में हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु प्रतिवर्ष 'तरूचिंतन' का प्रकाशन किया जाता है। इसके साथ ही परिषद् में होने वाले विभिन्न अनुसंधान क्रियाकलापों तथा वानिकी के विभिन्न कार्यक्रमों को 'वानिकी समाचार' में समेकित कर परिषद् की वेबसाइट पर प्रतिमाह अपलोड किया जाता है। इन सभी प्रकाशनों द्वारा देश के विभिन्न भागों में हिंदी के प्रसार तथा प्रयोग को प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् की वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' के प्रकाशन का उद्देश्य, परिषद् तथा इसके समस्त संस्थानों में सेवारत अधिकारियों, वैज्ञानिकों, कार्मिकों तथा इनके परिवार के सदस्यों की रचनाओं को इस पत्रिका में सम्मिलित कर, राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए प्रोत्साहित करना है। यह पत्रिका, वैज्ञानिक अवधारणाओं मुख्यतः वानिकी से संबंधित तथ्यों को जनमानस की भाषा में व्यक्त कर ज्ञान संसाधनों के विस्तार में भी सहायता कर रही है। 'तरुचिंतन' के इस अंक में ''रेड्ड– प्लस हिमालय परियोजना : हिमालय में रेड्ड–प्लस क्रियान्वयन में अनुभव का विकास एवं उपयोग" विषय पर लेख में जलवायु परिवर्तन की महत्वपूर्ण वैश्विक चुनौतियों को नियंत्रित करने के लिए परिषद् द्वारा विभिन्न राष्ट्रों के साथ समन्वय कर, निष्पादित की गई विभिन्न उल्लेखनीय उपलब्धियों को वर्णित किया गया है तथा झूम–कृषि, बायोमास समीकरण, निर्वनीकरण वन–निम्नीकरण, स्थानीय समुदायों के स्वरोजगार अवसरों का सृजन आदि महत्वपूर्ण बिंदुओं पर परिषद् द्वारा किए गए कार्यों का भी इस लेख में उल्लेख है।

'तरूचिंतन' के इस अंक के सफल प्रकाशन के लिए मैं समस्त मीडिया एवं विस्तार प्रभाग को हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि प्रत्येक वर्ष की तरह यह अंक भी ज्ञान की वृद्धि, मनोरंजन तथा राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार में सहायक होगा तथा आप सभी पाठकों की रचनात्मक क्षमता का विकास करेगा।

(विपिन चौधरी)

डॉ. शामिला कालिया

सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार प्रभाग)
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

संपादक की कलम से...

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद की 9 संस्थानों और 5 केंद्रों सहित पूरे देश के विभिन्न पारिस्थितिक क्षेत्रों में अवस्थिति इसे भाषायी रूप से भी एक विशिष्ट स्थिति प्रदान करती है। इसके संस्थानों एवं केंद्रों के विभिन्न भाषा–भाषी क्षेत्रों में होने से कार्मिकों के मध्य एक बहुभाषी संस्कृति का विकास हुआ है। इस बहुभाषिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकने तथा राजभाषा के प्रगामी प्रयोग को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य के एक माध्यम के रूप में तरूचिंतन का प्रकाशन किया जाता है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने 'राजभाषा' के लक्षणों के बारे में कहा था कि, अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए तथा उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार हो सकना चाहिए। इस प्रकार देखें तो परिषद् की वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' का हिंदी में प्रकाशन, अपने कार्मिकों के मध्य उनके विविध विचारों को प्रस्तुत करने के लिए एक पुल की तरह कार्य कर रहा है। साथ ही पत्रिका अपने नाम के अनुरूप वानिकी विषयों पर पाठकों को हिंदी में रूचिकर जानकारी भी प्रदान कर रही है जिससे राजभाषा के प्रचार–प्रसार का उद्देश्य भी सुफल हो रहा है।

तरूचिंतन के इस अंक में 20 रचनाओं को शामिल किया गया है। इस अंक में वानिकी विषयों से संबंधित सरल भाषा में कुछ महत्वपूर्ण विषय जैसेः रेड्ड–प्लस हिमालय परियोजनाः हिमालय में रेड्ड–प्लस क्रियान्वयन में अनुभव का विकास एवं उपयोग, उत्तराखण्ड की पादप विविधता, इंसुलिन पौधा तथा औषधीय गुणों वाले पौधों पर रोचक जानकारी वाले लेख प्रकशित किए गए हैं। साथ ही विविधा के अंतर्गत प्लास्टिक से बढ़ते प्रदूषण, मातृभाषा के महत्व तथा मधुमक्खी पालन में रोजगार संभावनाओं के विषय पर भी पाठकों को लेख पढ़ने को मिलेंगे। हर बार की तरह इस बार भी लालित्य के अंतर्गत रोचक साहित्यिक रचनाएं पढ़ने को मिलेंगी।

मुझे आशा ही नहीं वरन पूर्ण विश्वास है कि तरुचिंतन का यह अंक न सिर्फ आपका भरपूर मनोरंजन और ज्ञानवर्धन करेगा अपितु राजभाषा हिंदी के प्रचार–प्रसार में भी सहायक होगा।

(डॉ. शामिला कालिया)

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संरक्षक की कलम से		III
	प्रधान संपादक की कलम से		V
	संपादक की कलम से		VII
	राजभाषा		
1.	परिषद् (मुख्यालय) में राजभाषा गतिविधियाँ		1
2.	वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में राजभाषा गतिविधियाँ		3
3.	हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में राजभाषा गतिविधियाँ		5
4.	वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर में राजभाषा गतिविधियाँ		7
5.	वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में राजभाषा गतिविधियाँ		8
6.	शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में राजभाषा गतिविधियाँ		9
7.	काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू में राजभाषा गतिविधियाँ		11
8.	उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में राजभाषा गतिविधियाँ		12
9.	वन उत्पादकता संस्थान, राँची में राजभाषा गतिविधियाँ		13
10.	वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद में राजभाषा गतिविधियाँ		14
	वानिकी		
11.	रेड्ड–प्लस हिमालय परियोजनाः हिमायल में रेड्ड–प्लस क्रियान्वयन में अनुभव का विकास एवं उपयोग	डॉ. आर.एस. रावत श्री वी.आर.एस. रावत	17
12.	उत्तराखण्ड की पादप विविधता	डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा डॉ. अनूप चंद्रा डॉ. मनीष कुमार	21

13.	इंसुलिन पौधाः *कॉस्टस स्पेसियोसस* कोएन.	श्री पंकज सिंह, शैक सय्यद जॉन श्री प्रवीण एच. चव्हाण	26
14.	कलिहारी : एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा	श्री एस.एल. मीणा, श्री शैलेन्द्र राठौड़ श्री एन.के. बोहरा	28
15.	भेखल *(प्रिंसेपिया यूटिलिस)*: अल्पतर प्रयुक्त परंतु महत्वपूर्ण बहुपयोगी झाड़ीनुमा पौधा	डॉ. जोगिंदर सिंह, श्री ज्वाला प्रसाद श्री कुलदेश कुमार	32
16.	औषधीय गुणों से भरे – बणा, बसुट्टी और बरे	श्री दुष्यंत कुमार	35
17.	वानिकी तकनीकी एवं विस्तार : काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान में स्थिति	श्री पंकज के. अग्रवाल	37
18.	कृषिवानिकी में पॉपलर की नर्सरी एवं वृक्षारोपण तकनीक	श्री रामबीर सिंह	39
19.	साल के बीज और पौध का प्रमुख छिद्रक–पामेन थेरिसिस मेरिक *(लेपिडोप्टेरा टॉर्ट्रिसिडी)*	सुश्री मनीषा शर्मा डॉ. के.पी. सिंह	42
20.	कृषि–वानिकी क्षेत्र में नमूना एकत्रीकरण विधि एवं परीक्षण	डॉ. बी.एम. डिमरी, डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल श्री सुशील भट्टाराई	45
21.	कृषि–वानिकी योग्य आवश्यक पोषक तत्व की मात्रा एवं उपयोगिता	डॉ. बी.एम. डिमरी, श्री एन. बाला श्री सुशील भट्टाराई	51

विविधा

22.	पर्यावरण प्रदूषण में प्लास्टिक की भूमिका एवं इसके निदान के उपाय	डॉ. राजेश कुमार मिश्र	61
23.	शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा	श्री अवनीश कुमार	66
24.	पक्षियों का संसार	श्रीमती अनुराधा भाटी	68
25.	भारत में व्यावसायिक मधुमक्खी पालन – चुनौतियां एवं रोजगार सृजन हेतु संभावनाएं	श्री यशपाल सिंह बिष्ट	70
26.	भाषा की राष्ट्रीय एकता	श्री एम. विनयचन्द्रन	72
27.	पुस्तक समीक्षा	श्री ए.एस. चौहान	74

लालित्य

28.	सतत विकास : समय की मांग	श्री अखिल कुमार	79
29.	पृथ्वी पर प्रदूषण का सफर	श्री शिव सत्य प्रसाद	80
30.	दस्तूर दुनिया के	श्रीमती सुधा पाण्डेय	81
31.	लेखक परिचय		82

राजभाषा

परिषद् (मुख्यालय) में राजभाषा गतिविधियाँ

हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् में दिनांक 14 से 28 सितम्बर 2018 तक हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। दिनांक 14 सितम्बर 2018 को भा.वा.अ.शि.प. के सभागार में डॉ. सुरेश गैरोला, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून मुख्य अतिथि द्वारा हिन्दी पखवाड़ा का शुभारम्भ दीप प्रज्ज्वलित कर किया गया।

दीप प्रज्ज्वलित करते हुए डॉ. सुरेश गैरोला, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प.

इस अवसर पर बोलते हुए डॉ. सुरेश गैरोला, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. ने कहा कि हिन्दी विश्व में तीसरे नम्बर पर बोली जाने वाली भाषा है। उन्होंने कहा कि हिन्दी से सम्बन्धित आयोजनों का लाभ तभी मिलेगा जब हम इसे एक चुनौती के रूप में लेते हुए हिन्दी में काम करेंगे, अन्यथा अगर हम इसे एक और शासकीय आयोजन के रूप में निर्विकार भाव से लेंगे तो कोई परिवर्तन नहीं होने वाला। उन्होने जोर देते हुआ कहा कि राजभाषा हिन्दी में काम करना कोई विकल्प नहीं है, यह हमारी जिम्मेदारी है।

स्वागत भाषण के उपरांत हिन्दी दिवस 2018 के अवसर पर माननीय गृह मंत्री जी, भारत सरकार के संदेश को श्री विपिन चौधरी, उप महानिदेशक (विस्तार) द्वारा पढ़ा गया।

इसके उपरांत, एक सुमधुर संगीतमय कार्यक्रम 'सुर संगम' का आयोजन भी किया गया। समारोह का समापन डॉ. शामिला कालिया, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार) द्वारा धन्यवाद प्रस्ताव के साथ हुआ।

हिन्दी पखवाड़ा समारोह में श्री ए.एस. रावत, उप महानिदेशक (प्रशासन); श्री विपिन चौधरी, उप महानिदेशक (विस्तार); श्री एस.डी. शर्मा, उप महानिदेशक (अनुसंधान); डॉ. नीलू गेरा, उप महानिदेशक (शिक्षा) एवं निदेशक (अंतरराष्ट्रीय सहयोग); डॉ. राजीव तिवारी, सचिव, भा.वा.अ.शि.प. सहित अधिकारी/वैज्ञानिक एवं कर्मचारी उपस्थित रहे।

माननीय गृह मंत्री जी, भारत सरकार के संदेश को पढ़ते हुए श्री विपिन चौधरी, उप महानिदेशक (विस्तार)

दिनांक 28 सितम्बर 2018 को भा.वा.अ.शि.प. के सभागार में स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिता के साथ समापन समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर डॉ. सुरेश गैरोला, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून, मुख्य अतिथि थे। इस मौके पर डॉ. सुरेश गैरोला, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. ने कहा कि विगत पखवाड़े के मुकाबले हिन्दी के उपयोग में आशातीत वृद्धि हुई है और अब आवश्यकता है कि हिन्दी के प्रयोग की गति को सरकार द्वारा नियत लक्ष्यों की प्राप्ति तक

बरकरार रखा जाए। उन्होंने जोर देते हुआ कहा कि राजभाषा का कार्यान्वयन हमारी राष्ट्रीय जिम्मेदारी है।

डॉ. सुरेश गैरोला, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. हिन्दी पखवाड़े के समापन समारोह में विचार व्यक्त करते हुए

श्री ए.एस. रावत उप महानिदेशक (प्रशासन) ने स्वागत भाषण के दौरान राजभाषा हिन्दी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित प्रतियोगिताओं का विवरण देते हुए बताया कि इस वर्ष हिन्दी पखवाड़ा के दौरान 7 प्रतियोगिताएं यथा टिप्पण लेखन, निबंध, अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद, कम्प्यूटर पर हिन्दी टंकण, वाद–विवाद, राजभाषा हिन्दी प्रश्नोत्तरी (क्विज) एवं स्वरचित हिन्दी काव्यपाठ आयोजित की गईं, जिनमें कुल 68 प्रतिभागियों ने अत्यंत उत्साह से भाग लिया। उन्होने सूचित किया कि भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा पुरस्कारों के अंतर्गत 'क' क्षेत्र स्थित शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर को तथा 'ग' क्षेत्र में स्थित काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू को हिन्दी कार्यान्वयन में उत्कृष्ट कार्य के लिए वर्ष 2017–18 का राजभाषा पुरस्कार दिया गया।

मुख्यालय में कार्मिकों को दिए जाने वाला पुरस्कार श्री अनिल रावत, उच्च श्रेणी लिपिक, लेखा कार्यालय, प्रशासन निदेशालय, भा.वा.अ.शि.प. को दिया गया।

स्वागत भाषण के उपरांत स्वरचित काव्यपाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को मुख्य अतिथि डॉ. सुरेश गैरोला, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. के करकमलों द्वारा पुरस्कार प्रदान किये गये। श्री एस.डी. शर्मा, उप महानिदेशक (अनुसंधान), भा.वा.अ.शि.प. ने इस अवसर पर सभा को संबोधित करते हुए हिन्दी के निरंतर उपयोग की आवश्यकता पर बल दिया। समारोह का समापन डॉ. शामिला कालिया, सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार) द्वारा धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ। समापन समारोह में लगभग 100 अधिकारी / वैज्ञानिक एवं कर्मचारी उपस्थित रहे।

बैठकें:

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 19 मार्च 2018 को प्रथम, 7 जून 2018 को द्वितीय, 1 अक्टूबर 2018 को तृतीय तथा 20 दिसम्बर 2018 को चतुर्थ बैठक का आयोजन किया गया। इसमें राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ाने से सम्बंधित महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा की गई।

कार्यशालाएं :

परिषद् में प्रत्येक वर्ष राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने तथा कार्मिकों को राजभाषा अधिनियम की जानकारी तथा हिन्दी के प्रयोग के विषय में जानकारी बढ़ाने के उद्देश्य से हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है।

वर्ष के दौरान 23 मार्च 2018 को प्रथम प्रशिक्षण कार्यशाला आयोजित की गई। द्वितीय कार्यशाला का आयोजन 8 जून 2018 को किया गया जिसका उद्घाटन डॉ. सुरेश गैरोला महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. द्वारा किया गया। इस प्रशिक्षण कार्यशाला में मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. एम.आर. सकलानी, सहायक निदेशक (राजभाषा) (सेवानिवृत्त) को आमंत्रित किया गया। डॉ. सकलानी ने सरकारी काम काज में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए सुगम एवं व्यावहारिक उपायों पर सुझाव दिए। तृतीय कार्यशाला का आयोजन 18 सितम्बर को तथा चतुर्थ कार्यशाला का आयोजन 18 दिसम्बर 2018 को किया गया जिसमें क्रमशः 14 एवं 24 कार्मिकों ने हिस्सा लिया। अपनी प्रतिपुष्टि में अधिकांश कार्मिकों ने कार्यशालाओं को अति उपयोगी व ज्ञान–वर्धक बताया।

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में राजभाषा गतिविधियाँ

बैठक

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की दिनांक 25 अप्रैल, 2017 को प्रथम, दिनांक 27 जुलाई, 2017 को द्वितीय, दिनांक 24 अक्तूबर, 2017 को तृतीय, तथा दिनांक 29 जनवरी, 2018 को चतुर्थ बैठक आयोजित की गई ।

कार्यशाला

संस्थान में, राजभाषा अधिनियम, प्रारूप लेखन, यूनीकोड एवं हिंदी वेबसाईट विषय पर दिनांक 22 जून, 2017 को प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में डॉ. एम.आर. सकलानी, पूर्व सहायक निदेशक (राजभाषा) आयकर विभाग एवं सदस्य सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, देहरादून ने सभी प्रतिभागियों को राजभाषा अधिनियमों की जानकारी दी। श्री अरविंद जौहरी, अनुभाग अधिकारी द्वारा प्रतिभागियों को हिंदी में टिप्पण एवं प्रारूप लेखन के विषय में विस्तार से जानकारी दी गई और अंत में डॉ. निलेश यादव, वैज्ञानिक–'डी' द्वारा हिंदी वेबसाइट की जानकारी और उस पर कार्य करने संबंध में जानकारी उपलब्ध कराई गई। उक्त प्रशिक्षण कार्यशाला में 27 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया।

राजभाषा अधिनियम, प्रारूप लेखन, यूनीकोड एवं हिंदी वेबसाईट विषय पर प्रशिक्षण कार्यशाला

प्रशिक्षण

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए हिंदी टंकण एवं हिंदी सॉफ्टवेयर की जानकारी विषय पर दिनांक 19 मार्च, 2018 को प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में श्री अरविंद जौहरी, अनुभाग अधिकारी ने कंप्यूटर पर हिंदी टंकण विषय पर व्याख्यान दिया और टंकण की तकनीक में बारे में प्रतिभागियों को अवगत कराया। इसके पश्चात डॉ. निलेश यादव, वैज्ञानिक–'डी', द्वारा प्रतिभागियों को कम्प्यूटर पर विभिन्न प्रकार के हिंदी सॉफ्टवेयर की जानकारी और उन्हें प्रयोग में लाने की तकनीक के बारे में प्रायोगिक अभ्यास कराया गया। उक्त प्रशिक्षण कार्यशाला में 19 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया।

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में हिन्दी टंकण प्रशिक्षण कार्यशाला में कर्मचारियों की भागीदारी

हिन्दी सप्ताह का आयोजन

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में 14 से 20 सितम्बर, 2017 तक हिंदी सप्ताह का आयोजन किया गया। सप्ताह के दौरान हिंदी टंकण, हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, हिंदी निबंध लेखन एवं स्वरचित हिंदी काव्यपाठ प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। दिनांक 20

सितम्बर, 2017 को समापन समारोह में मुख्य अतिथि डॉ. सविता, निदेशक, वन अनुसंधान संस्थान द्वारा हिन्दी टंकण प्रतियोगिता के विजेता प्रतिभागियों, सुधीर सिंह बिष्ट, बी.डी. बडोला, ममता उप्रेती एवं श्रीमती दीप्ती को क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं प्रोत्साहन पुरस्कार एवं प्रशस्तिपत्र प्रदान किए गए। डॉ. एस.डी. शर्मा, प्रभाग प्रमुख, वन संवर्धन एवं प्रबंध प्रभाग द्वारा हिन्दी टिप्पण व प्रारूप लेखन के विजेता छत्रपाल सिंह सैनी, संजीव खुगशाल, एस.एस मित्तल, एवं सुशील भट्टाराई को क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं प्रोत्साहन पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। डॉ. एन.के. उप्रेती, समूह समन्वयक, वन अनुसंधान संस्थान द्वारा हिंदी निबंध लेखन प्रतियोगिता के विजेता, आशीष कुमार, ममता उप्रेती, अरविन्द कुमार एवं सुधीर सिंह बिष्ट को क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं प्रोत्साहन पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया तथा श्रीमती नीलिमा शाह, कुलसचिव द्वारा स्वरचित हिंदी काव्य पाठ प्रतियोगिता के विजेताओं सुबोध बाजपेयी, छत्रपाल सिंह सैनी, सचिन कुमार एवं संजीव खुगशाल को क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं प्रोत्साहन पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

अपने उद्घाटन भाषण में मुख्य अतिथि डॉ. सविता ने कहा कि राजभाषा कार्यान्वयन हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। उन्होंने राजभाषा के महत्व पर जोर दिया और सभी उपस्थित अधिकारियों तथा कर्मचारियों को संस्थान के दैनिक शासकीय कार्यो में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए भविष्य में विविध गतिविधियां आयोजित करने की जानकारी दी। मुख्य अतिथि महोदया ने हिंदी सप्ताह के समापन समारोह के अवसर पर संस्थान की द्विभाषी (हिंदी एवं अंग्रेजी) वेबसाइट का भी शुभारम्भ किया। हिंदी की वेबसाईट का पता

निदेशक, वन अनुसंधान संस्थान, डॉ. सविता
हिन्दी सप्ताह के समापन समारोह को सम्बोधित करते हुए

www.fri.res.in/hindi & english है जिसे किसी भी वेब ब्राउजर पर देखा जा सकता है। श्रीमती नीलीमा शाह, कुलसचिव के कुशल मार्गदर्शन में श्री रामबीर सिंह, वैज्ञानिक–'डी' एवं प्रभारी अधिकारी, हिंदी अनुभाग, वन अनुसंधान संस्थान द्वारा सम्पूर्ण कार्यक्रम का आयोजन एवं संचालन किया गया। समापन समारोह के अवसर पर सभी प्रभागों के प्रमुख एवं लगभग 250 अधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित रहे। सम्पूर्ण कार्यक्रम में श्री रमेश सिंह, उच्च श्रेणी लिपिक, हिंदी अनुभाग का योगदान सराहनीय रहा। धन्यवाद प्रस्ताव के साथ कार्यक्रम का समापन किया गया।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति

श्री रामबीर सिंह, वैज्ञानिक–डी एवं प्रभारी अधिकारी एवं श्री रमेश सिंह, उ.श्रे.लि. द्वारा दिनांक 28 जून, 2017 को तथा श्री दिनेश चन्द्र, हिन्दी अनुवादक, एवं श्री रमेश सिंह, उ.श्रे.लि. द्वारा दिनांक 22 नवम्बर, 2017 को नराकास की छमाही बैठकों में सहभागिता की गई।

❁ ❁ ❁

आने को आती नहीं, कभी साँच को आँच,
सपने है ताजा लहू, सपने टूटा काँच।।

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में राजभाषा गतिविधियाँ

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून, जो पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत परिषद् है, के अधीनस्थ एक महत्वपूर्ण शोध संस्थान है। संस्थान मुख्यतः वनों से सम्बंधित समस्याओं पर अनुसंधान करता है।

राजभाषा के क्षेत्र में विशेष उपलब्धियां :

- नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–2) के तत्वाधान में कैनरा बैंक, शिमला द्वारा दिनांक 21.12.2017 को आयोजित हिंदी निबंध प्रतियोगिता में इस संस्थान के श्री प्रवीण कुमार ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।
- श्री राकेश कुमार, सहायक, ने नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कार्यालय–2) के तत्वाधान में भारत संचार निगम लिमिटेड, शिमला द्वारा दिनांक 23 जनवरी 2018 को आयोजित हिंदी टिप्पण एवं प्रारूपण प्रतियोगिता में भाग लिया तथा सांत्वना पुरस्कार प्राप्त किया।
- हिंदी पखवाड़े के आयोजन के दौरान संस्थान द्वारा राजभाषा हिंदी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से करवाई गई विभिन्न प्रतियोगिताओं के (15) विजेताओं को पुरस्कार प्रदान कर सम्मानित किया गया।

हिंदी कार्यशाला का आयोजन

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला द्वारा दिनांक 14 जून 2017 को हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें 25 अनुसचिवीय कर्मचारियों तथा अधिकारियों ने भाग लिया।

हिंदी कार्यशाला में भाग लेते अधिकारी एवं कर्मचारी

संस्थान के हिंदी अधिकारी श्री प्रदीप भारद्वाज ने विषय विशेषज्ञ, श्री राजेश डोगरा, प्रबंधक (राजभाषा), राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, शिमला तथा कार्यशाला में उपस्थित सभी अधिकारियों व कर्मचारियों का स्वागत किया तथा संस्थान द्वारा राजभाषा के क्षेत्र में किए जा रहे विभिन्न कार्यों का संक्षेप में उल्लेख किया।

हिंदी पखवाड़े का आयोजन

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला द्वारा दिनांक 14 से 28 सितम्बर 2017 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया।

हि.व.अ.सं., शिमला में हिन्दी पखवाड़े का आयोजन

पखवाड़े के दौरान सरकारी कार्यों में राजभाषा हिंदी को बढ़ावा देने हेतु संस्थान द्वारा कंप्यूटर पर हिंदी टंकण, सुलेख, निबंध लेखन, नोटिंग–ड्राफ्टिंग तथा स्वरचित कविता पाठ, इत्यादि प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

समापन समारोह के मुख्य अतिथि, डॉ. कुलराज सिंह कपूर, समूह समन्वयक अनुसंधान, हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला ने इस अवसर पर अपने संबोधन में कहा कि हिन्दी संवैधानिक रूप से भारत की प्रथम राजभाषा है, और इसके साथ यह देश में सबसे अधिक बोली और समझी जाती है।

डॉ. कपूर ने कहा कि किसी भी स्वाधीन देश के लिए जो महत्व उसके राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रगान का है, वही उसकी राजभाषा का भी है। प्रजातांत्रिक देश में जनता और सरकार के बीच भाषा की दीवार नहीं होनी चाहिए और शासन का काम जनता की भाषा में किया जाना चाहिए। जब तक विदेशी भाषा में शासन होता रहेगा, तब तक कोई देश सही अर्थों में स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी भाषा में ही स्पष्टता और सरलता से अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकता है।

हिंदी कार्यशाला का आयोजन

12 सितम्बर 2018 को हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान में लगभग 25 अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने भाग लिया। भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् द्वारा हाल ही में निर्देश दिए गए हैं कि संस्थान में राजभाषा प्रगति निगरानी पंजिका का गठन किया जाए। तद्नुसार कार्यशाला के दौरान, राजभाषा प्रगति निगरानी पंजिका का संस्थान में सुचारू रूप से लागू तथा कार्यान्वित करने पर विस्तृत चर्चा की गई तथा इस विषय पर सुझाव भी दिए गए।

विभिन्न राजभाषा गतिविधियों की मीडिया कवरेज

हिंदी पखवाड़े की प्रतियोगिताओं में अव्वल रहे रोहित

एचएफआरआई ने 28 तक मनाया हिंदी पखवाड़ा

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान शिमला की ओर से 14 से 28 सितंबर तक हिंदी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। इस मौके पर संस्थान की ओर से राजभाषा हिंदी के प्रचार एवं प्रसार के लिए कंप्यूटर पर हिंदी टंकण, सुलेख, निबंध लेखन, नोटिंग-ड्राफ्टिंग और स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इस मौके पर समूह समन्वयक अनुसंधान डा कुलराज सिंह कपूर ने कहा कि हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की प्रथम राजभाषा है, और इसके साथ यह देश में सबसे अधिक बोली और समझी जाती है।

हिंदी टंकण प्रतियोगिता में रोहित प्रथम

शिमला। हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान शिमला की ओर से 14 से 28 सितंबर तक हिंदी पखवाड़ा मनाया गया। राजभाषा हिंदी के प्रचार और प्रसार के लिए संस्थान की ओर से कंप्यूटर पर हिंदी टंकण, सुलेख, निबंध लेखन, नोटिंग ड्राफ्टिंग तथा स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिताएं करवाई गईं। कंप्यूटर पर हिंदी टंकण में रोहित कुमार ने प्रथम, गुलेर सिंह ने द्वितीय, कृष्ण देव ने तृतीय, सुलेख में कलदेव ने प्रथम, मोनिका शर्मा द्वितीय, कुमारी शबनम तृतीय, निबंध लेखन में प्रवीण कुमार प्रथम, कुलवंत राय गुलशन द्वितीय, कृष्ण देव तृतीय स्थान पर रहे। नोटिंग ड्राफ्टिंग में कृष्ण देव ने प्रथम, प्रवीण कुमार ने द्वितीय तथा रोहित कुमार में तृतीय स्थान प्राप्त किया। समापन समारोह के मुख्य अतिथि कुलराज सिंह कपूर ने विजेताओं को सम्मानित किया। ब्यूरो

प्रतियोगिता हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान ने हिंदी पखवाड़े का किया आयोजन

निबंध लेखन में प्रवीण कुमार प्रथम

हिन्दी टंकण में रोहित अव्वल

शिमला, 29 सितम्बर। ब्यूरो : हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान शिमला द्वारा हिन्दी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इस दौरान राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए संस्थान द्वारा कम्प्यूटर पर हिन्दी टंकण, सुलेख, निबंध लेखन, नोटिंग-ड्राफ्टिंग तथा स्वरचित कविता पाठ प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। कम्प्यूटर पर हिन्दी टंकण में रोहित कुमार ने प्रथम, गुलेर सिंह ने द्वितीय और कृष्ण देव ने तृतीय स्थान हासिल किया। सुलेख प्रतियोगिता में कलदेव ने प्रथम, मोनिका शर्मा ने द्वितीय व कुमारी शबनम ने तृतीय, निबंध लेखन में प्रवीण कुमार ने प्रथम, कुलवंत राय गुलशन ने द्वितीय व कृष्ण देव ने तृतीय स्थान, नोटिंग- ड्राफ्टिंग में कृष्ण देव ने प्रथम, प्रवीण कुमार ने द्वितीय तथा रोहित कुमार ने तृतीय स्थान, कविता पाठ प्रतियोगिता में दुष्यंत कुमार ने प्रथम, कुमारी शबनम ने द्वितीय और अजय कटोच ने तृतीय स्थान प्राप्त किया।

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर में राजभाषा गतिविधियाँ

राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान में 13 जून 2018 को ''सरकारी कामकाजों में सहज एवं सरल हिन्दी'' विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें निदेशक सहित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। इसी क्रम में 24 जुलाई 2018 को सभी प्रशासनिक कर्मचारियों को रोजाना के कार्य में राजभाषा प्रयोग में प्रगति करने हेतु राजभाषा में टिप्पणी लेखन विषय पर एक हिन्दी कक्षा का आयोजन किया गया। इस कक्षा में डॉ. मोहित गेरा, निदेशक, वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर, डॉ. वी.कु.व.बाचपई, सचिव, श्रीमती पूंगोदै कृष्णन, कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक और सभी प्रशासनिक कर्मचारियों ने उत्साह से भाग लिया। कर्मचारियों ने हिन्दी की उपयोगिता एवं प्रमुखता के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किये।

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर में 1–14 सितम्बर तक हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। इस दौरान हिन्दी हस्त लेखन प्रतियोगिता, हिन्दी समाचारपत्र वाचन प्रतियोगिता और हिन्दी टंकण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने बहुत–उत्साह से भाग लिया। इस कार्यक्रम में मुख्य अथिति के रूप में डॉ. टी.एस.अशोक कुमार, भा.व.से., प्रधानाचार्य, केन्द्रीय अकादमी राज्य वन सेवा, कोयम्बटूर को आमंत्रित किया गया था।

हिन्दी कार्यशाला का आयोजन

कार्यक्रम में बोलते हुए निदेशक महोदय ने संस्थान द्वारा राजभाषा कार्यान्वयन की प्रगति पर चर्चा की एवं बताया कि भारत सरकार द्वारा 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को राजभाषा के रूप में चुना गया था अतः इस दिन को हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। उन्होने कहा कि राजभाषा नियम के अनुसार हमारा संस्थान 'ग' क्षेत्र में स्थित है और 'ग' क्षेत्र में स्थित कार्यालयों के लक्ष्य के अनुसार इस तिमाही में संस्थान के द्वारा पत्राचार में 50 फाइलों की टिप्पणी लेखन में 32 और हिन्दी में प्राप्त पत्रों का जवाब हिन्दी में देने में 100 का लक्ष्य हासिल किया गया है। उन्होंने कहा कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने में आप सभी का सहयोग रहा है और आगे भी आशा करते हैं कि राजभाषा कार्यान्वयन में प्रगति करते रहेंगे।

निदेशक महोदय का भाषण

मुख्य अथिति डॉ. टी.एस. अशोक कुमार, ने प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार एवं प्रमाणपत्र देकर उन्हें सम्मानित किया और सभी सहभागियों को भी प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया।

मुख्य अतिथि ने राजभाषा का महत्व बताते हुए संस्थान के द्वारा राजभाषा कार्यान्वयन गतिविधियों पर की गई प्रगति के लिये सभी को बधाई दी और यह आशा प्रकट की कि भविष्य में भी इसी तरह राजभाषा गतिविधियों में उन्नति होती रहेगी। अंत में श्रीमती पूंगोदै कृष्णन, कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक ने सभी को धन्यवाद करते हुए इस कार्यक्रम का समापन किया।

वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में राजभाषा गतिविधियाँ

प्रत्येक वर्ष की तरह इस बार भी दिनांक 14 सितम्बर 2018 को राजभाषा हिन्दी के प्रति अपनी निष्ठा दर्शाते हुए संस्थान में बड़े ही हर्षोल्लास के साथ हिन्दी दिवस समारोह का आयोजन किया गया।

हिन्दी दिवस का शुभारंभ प्रातः 10 बजे उद्घाटन समारोह के साथ किया गया जिसमें संस्थान के निदेशक, डॉ. आर.एस.सी. जयराज, भा.व.से., डॉ. आर. के. बोरा, समूह समन्वयक (अनु.) तथा प्रभागों के प्रमुख, सभी वैज्ञानिकगण, अधिकारीगण, कर्मचारीगण और शोधार्थी उपस्थित थे। हिन्दी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं देते हुए डॉ. मनीष कुमार सिंह, हिन्दी अधिकारी ने सभी का स्वागत किया और हिन्दी दिवस पर एक प्रस्तुति दी। इसके बाद डॉ. आर.के. बोरा, समूह समन्वयक (अनु.) के द्वारा माननीय गृहमंत्री श्री राजनाथ सिंह का संदेश सबके सम्मुख पढ़ा गया।

हिन्दी दिवस समारोह के कुछ दृश्य

अपने भाषण मे निदेशक महोदय ने हिन्दी भाषा के साथ–साथ प्रादेशिक भाषाओं के विकास पर भी प्रकाश डाला। उन्होने सभी को हिन्दी दिवस की बधाई देते हुए सभी कार्यक्रमों में प्रतिभागिता पर जोर डाला। इसके बाद डॉ. मनीष कुमार सिंह ने दिन भर आयोजित होने वाली विभिन्न प्रतियोगिताओं के बारे मे सभी को अवगत कराया व संस्थान के सभी लोगों को उसमे भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। सभा के उपरांत एक निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गई। तत्पश्चात, अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए अपराह्न में

हिन्दी दिवस समारोह के कुछ दृश्य

प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता आयोजित की गयी जिसमें सभी की भागीदारी सराहनीय रही। हिन्दी दिवस के समापन के अवसर पर मुख्य अतिथि कु. दाविंदर सुमन, डी.सी.एफ., जोरहाट विभाग के स्वागत पश्चात सभा में काव्य पाठ कार्यक्रम आयोजित किया गया। इसके उपरांत संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. डी. के. दास, पारिस्थितिकी विभाग, ने हिन्दी भाषा पर आपने विचार रखे। अंत में मुख्य अतिथि ने अपने भाषण में हिन्दी भाषा की व्यापकता पर प्रकाश डाला। उन्होने कहा कि हिन्दी अब केवल भारत में ही नहीं अपितु कई देशों में पठन–पाठन की भाषा है। अपने अनुभव बांटते हुए उन्होने कहा कि हिन्दी के उपयोग मे वन विभाग सदैव तत्पर है। अंत में मुख्य अतिथि द्वारा सभी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कृत किया गया व डॉ. मनीष कुमार सिंह, हिन्दी अधिकारी द्वारा धन्यवाद ज्ञापन के साथ सभा के समापन की घोषणा की गई।

हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार वितरित किए गए

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में राजभाषा गतिविधियाँ

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में 'हिन्दी सप्ताह' (14 से 20 सितंबर, 2018) का आयोजन किया गया। संस्थान के हिन्दी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने माननीय गृह मंत्री,भारत सरकार का संदेश पढ़ा तथा राजभाषा विभाग के जारी दिशा निर्देशों के अनुरूप हिन्दी सप्ताह मनाये जाने का प्रयोजन बताया व हिन्दी सप्ताह के दौरान की गतिविधियों के संबंध में अवगत कराया। इस अवसर पर राजभाषा हिन्दी पर विचार अभिव्यक्ति सह संगोष्ठी कार्यक्रम रखा गया जिसमें संस्थान कर्मियों ने उत्साह से भाग लिया। डॉ. सरिता आर्य, वैज्ञानिक–'जी' डॉ. तरुण कान्त, वैज्ञानिक–'एफ', श्रीमती मीता सिंह तोमर, तकनीशियन, श्रीमती दीपिका लोढ़ा, तकनीशियन, श्री अजय वशिष्ठ, कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक ने राजभाषा हिन्दी पर अपने विचार रखे। कार्यक्रम में राजभाषा हिन्दी पर दो लघु वृत्त चित्र भी दिखाए गए।

संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. जी. सिंह ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि आमजन के लिए प्रकाशित होने वाली सामग्री का जहां तक संभव हो वैज्ञानिक शोध एवं निष्कर्ष मूलतः हिन्दी में स्वप्रेरणा से लिखा जाना आवश्यक है। हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में विज्ञान में मौलिक लेखन अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है, इस दिशा में वैज्ञानिकों को पहल करने की आवश्यकता है।

संस्थान के निदेशक डॉ. इन्द्र देव आर्य ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की अपनी एक अलग पहचान है। कई राष्ट्रों में हिन्दी शिक्षण हो रहा है। भाषा की महत्ता पर आपने कहा कि भारत बहुभाषी है, यहाँ विभिन्न प्रदेशों में अनेक मातृभाषाएँ बोली जाती हैं परंतु एक भारतीय द्वारा विदेश में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग उसकी राष्ट्रीयता को दर्शाता है।

हिन्दी सप्ताह के दौरान टिप्पण–आलेखन, हिन्दी टंकण (सामान्य), हिन्दी टंकण (सारांश), हिन्दी प्रश्नोत्तरी, राजभाषा बोध, स्व रचित कविता पाठ इत्यादि प्रतियोगिताएं आयोजित हुईं।

हिन्दी प्रश्नोत्तरी में भाग लेते प्रतिभागी

हिन्दी सप्ताह का समापन समारोह दिनांक 20.09.2018 को हुआ। समारोह में श्री गौतम अरोड़ा, मण्डल रेल प्रबन्धक उ.प. रेलवे, जोधपुर एवं अध्यक्ष, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जोधपुर मुख्य अतिथि रहे।

हिन्दी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने वर्ष 2017–18 की संस्थान की हिन्दी की वार्षिक प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा हिन्दी सप्ताह–2018 के दौरान हुई गतिविधियों पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर स्व रचित कविता पाठ प्रतियोगिता का भी आयोजन किया जिसमे संस्थान कर्मियों ने विविध विषयों पर कविता के द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त किया।

समापन समारोह में वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. रंजना आर्या ने हिन्दी पर अपने विचार व्यक्त करते हुए ऐसे अवसरों पर संस्थान में सभी को उत्साहपूर्वक सहभागिता करने के महत्व को बताया तथा वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र में हो रही गतिविधियों से आम जन को जोड़ने में सरल हिन्दी के प्रयोग की भूमिका

को महत्वपूर्ण बताया, जिसके लिए आपने सभी को प्रेरित किया कि वे अधिकाधिक कार्य मूल रूप से हिन्दी में करें।

इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. इन्द्र देव आर्य ने बताया कि संस्थान में अधिकांश सरकारी कामकाज व वार्तालाप हिन्दी में हो रहा है जिसे स्वप्रेरणा से निरंतर जारी रखे जाने की आवश्यकता है।

समारोह में विचार प्रकट करते हुए संस्थान के निदेशक डॉ. इन्द्र देव आर्य

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री गौतम अरोड़ा ने संस्थान के कर्मियों की कविताएं सुनकर उनकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति की प्रशंसा की। आपने

सम्बोधन देते हुए मुख्य अतिथि श्री गौतम अरोड़ा

संस्थान के राजभाषा में हो रहे कामकाज को भी सराहा। आपने राजभाषा के नीति–निर्देशों के अनुरूप सरकारी कामकाज में निरंतर हिन्दी के प्रयोग करने को कहा।

कार्यक्रम में मुख्य अतिथि द्वारा हिन्दी सप्ताह के दौरान हुई हिन्दी प्रतियोगिताओं के विजेताओं व हिन्दी में मूल कार्य करने वाले कर्मचारियों को राजभाषा प्रोत्साहन पुरस्कार एवं प्रमाण–पत्र प्रदान किए गए। कार्यक्रम में मंच संचालन श्री अजय वशिष्ठ, कनिष्ठ हिन्दी अनुवादक ने किया। आभार व्यक्त करने के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

❁❁❁

मरहम पट्टी संग रखें, संग रखें रूमाल,
सपने ही अब आपको, करने लगे हलाल।।

है उड़ान की जद मगर, बिछा हुआ है जाल,
कैसे कोई हल करे, इतना बड़ा सवाल।।

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू में राजभाषा गतिविधियाँ

वर्ष 2017–18 के दौरान संस्थान द्वारा राजभाषा के कार्यान्वयन पर किए गए कार्य एवं गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है :

संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन हेतु मुख्यालय, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून के माध्यम से प्राप्त राजभाषा विभाग, भारत सरकार के दिशा निर्देशों का अनुपालन किया गया। संस्थान के निदेशक महोदय की अध्यक्षता में गठित राजभाषा कार्यान्वन समिति की बैठकें निर्धारित समय पर नियमित रूप से आयोजित की गईं। आयोजित बैठकों के कार्यवृत्त संबंद्ध कार्यालय एवं अधिकारियों को अपेक्षित कार्रवाई हेतु नियत समय पर भेज दिए गए।

इस वर्ष के दौरान धारा 3(3) के तहत जारी कार्यालय आदेश, परिपत्र आदि दस्तावेजों को अनिवार्यतः द्विभाषी रूप में जारी किया गया तथा हिन्दी में प्राप्त पत्रों के उत्तर हिन्दी में दिए गए। हिन्दी पत्राचार का निर्धारित लक्ष्य 55% पूरा किया गया एवं भविष्य में इसे और अधिक करने हेतु प्रयास जारी है। नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, बेंगलुरू द्वारा समय–समय पर आयोजित समारोह एवं बैठकों में संस्थान के प्रतिनिधि ने सक्रियता से भाग लिया तथा बैठकों में दिए गए सुझावों को गंभीरता से लागू किया गया।

इस दौरान संस्थान के अधिकारीगणों के लिए राजभाषा अभिमुखीकरण एवं कर्मचारी वृन्द के लिए हिन्दी कार्यशाला प्रत्येक तिमाही में आयोजित की गई। संस्थान में शासकीय काम–काज मूल रूप से हिन्दी में करने वाले कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से भारत सरकार द्वारा जारी विविध प्रोत्साहन नकद पुरस्कार की योजनाएँ लागू की गई। संस्थान के निदेशक महोदय की अध्यक्षता में समय–समय पर संस्थान में आयोजित शीर्षस्थ प्रशासनिक बैठकों में हिन्दी में चर्चा की गई।

वर्ष 2017 के सितंबर माह में हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया गया जिसमें शब्दावली, टिप्पणी/मसौदा लेखन, अनुवाद, आशु भाषण, हिन्दी कविता लेखन, हिन्दी निबंध लेखन, हिन्दी में अंत्याक्षरी आदि विविध प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। संस्थान के राजभाषा अधिकारी ने वर्ष के दौरान राजभाषा प्रयोग की प्रगति की दिशा में संचालित किए गए कार्यक्रमों एवं गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह के अवसर पर विजेताओं को संस्थान के निदेशक तथा समारोह के मुख्य अतिथि श्री अजय मिश्रा, भा.व.से, अपर प्रधान मुख्य वन संरक्षक, कर्नाटक, के करकमलों द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया। समारोह के अध्यक्ष एवं संस्थान के निदेशक महोदय ने राजभाषा नियमों का पालन करने तथा संस्थान में कार्यरत पदाधिकारियों को अपने दैनिक शासकीय काम–काज में राजभाषा के अधिकाधिक उपयोग हेतु आग्रह किया। समारोह के मुख्य अतिथि महोदय ने संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में किए जा रहे सार्थक प्रयासों की सराहना की।

अंत में संस्थान के कर्मचारियों एवं शोध छात्रों द्वारा एक सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। समारोह के अंतिम चरण में उपस्थित सभी सदस्यों को सहयोग के लिए धन्यवाद दिया गया।

❋❋❋

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में राजभाषा गतिविधियाँ

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर की गत वर्ष की राजभाषा गतिविधियाँ निम्नांकित प्रकार रहीं।

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद देहरादून (मुख्यालय) के निर्देशानुसार, संस्थान में निदेशक की अध्यक्षता में गठित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें नियमित रूप से आयोजित कर संस्थान में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग की स्थिति की समीक्षा करते हुए, संस्थान में संघ की राजभाषा नीति का अनुपालन सुनिश्चित करने एवं शासकीय काम–काज में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करने के निर्णय लिये एवं उन निर्णयों पर हस्ताक्षरकर्ता अधिकारी स्तर पर अमल किया। इस दौरान, हस्ताक्षरकर्ता अधिकारियों ने राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) का अनुपालन सुनश्चित किया तथा 'क' एवं 'ख' क्षेत्र से अंग्रेजी में प्राप्त पत्रों के उत्तर राजभाषा हिन्दी में देकर तथा हिन्दी पत्राचार का निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में सकारात्मक प्रयास किये। इस दौरान, राजभाषा हिन्दी के आवधिक प्रतिवेदनों को तय समय पर संबंधित कार्यालय को प्रेषित किए गए।

संस्थान द्वारा वर्ष 2016–17 के दौरान, राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में किये उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए डॉ. सुरेश गैरोला, भा.व.से., महानिदेशक, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (मुख्यालय), देहरादून के करकमलों से 'भा.वा.अ.शि.प. राजभाषा पुरस्कार' प्रमाण–पत्र एवं शील्ड प्रदान कर प्रोत्साहित किया गया है जिसके फलस्वरूप संस्थान के समस्त पदाधिकारियों में संस्थान के शासकीय काम–काज में राजभाषा हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करने का उत्साहवर्धक वातावरण बढ़ा है।

संस्थान में, निदेशक की अध्यक्षता में 14 सितंबर को हिन्दी दिवस एवं 15 से 29 सितंबर तक हिन्दी पखवाड़ा समारोह का आयोजन किया। हिन्दी दिवस के अवसर पर, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा जारी माननीय गृह मंत्रीजी का हिन्दी दिवस संदेश वाचन समारोह आयोजित किया गया।

15 सितबंर से 29 सितंबर के दौरान, संस्थान में कार्यरत पदाधिकारी एवं शोध–छात्रों के लिए हिन्दी की विविध प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं एवं सफल प्रतियोगियों को हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह के अवसर पर संस्थान के निदेशक एवं कार्यालय प्रमुख द्वारा पुरस्कार–पत्र प्रदान कर उन्हे संस्थान के शासकीय काम–काज में राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग अधिकाधिक बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

राजभाषा पुरस्कार प्रमाण पत्र एवं शील्ड

वन उत्पादकता संस्थान, रांची में राजभाषा गतिविधियाँ

संघ सरकार की राजभाषा नीति के संबंध में संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति को प्रमुखता देते हुए राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु प्रत्येक वर्ष की भांति इस बार भी संस्थान में दिनांक 01 सितम्बर से 15 सितम्बर, 2017 तक हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन किया गया। हिन्दी पखवाड़ा के दौरान संस्थान में प्रशासनिक एवं अनुसंधान संबंधित कार्यकलाप हिन्दी में किए गए जिसमें संस्थान के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सक्रिय सहभागिता रही।

इस दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों की एक औपचारिक बैठक दिनांक 15 सितम्बर, 2017 को की गयी। बैठक की अध्यक्षता डॉ. शमीम अख्तर अंसारी, निदेशक और अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति, व.उ.सं., राँची द्वारा की गई। बैठक में संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिकों सहित अन्य अधिकारी, कर्मचारी तथा शोधार्थीगण उपस्थित थे। श्रीमती रूबी एस.कुजूर, वैज्ञानिक–'सी' एवं हिन्दी अधिकारी, व.उ.सं., रांची ने बैठक में उपस्थित अधिकारियों एवं कर्मचारियों का अभिनंदन करते हुए हिन्दी से संबंधित अपने विचार तथा सुझाव प्रस्तुत करने का आग्रह किया। इसी क्रम में डॉ. शरद तिवारी, वैज्ञानिक–'एफ', डॉ. अनिमेष सिन्हा, वैज्ञानिक–'ई', श्री रविशंकर प्रसाद, श्री एस.सी. मुखर्जी, श्री कन्हाई लाल डे, श्री करम सिंह मुंडा ने भी अपने–अपने विचार सभा के समझ रखे।

समारोह में उपस्थित वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं शोधार्थियों को संबोधित करते हुए निदेशक ने कार्यालय में हो रही गतिविधियों और कार्यकलापों की सराहना की और कार्यालय के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिन्दी के प्रचार–प्रसार में उनकी सक्रिय भागीदारी एवं योगदान के लिए बधाई दी। हिन्दी पखवाड़ा के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इसी क्रम में दिनांक 04 सितम्बर, 2017 को ''आधुनिक कल्प–वृक्ष–अंतरजाल (Internet)'' पर निबंध लेखन, हिन्दी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन (नोटिंग एवं ड्राफ्टिंग) प्रतियोगिता, ''सोशल नेटवर्किंग साइट – विष या वरदान'' विषय पर वाद–विवाद प्रतियोगिता, दिनांक 07 सितम्बर, 2017 को हिन्दी JAM (Just a Minute) प्रतियोगिता तथा क्विज प्रतियोगिता का सफल आयोजन किया गया। इन सभी प्रतियोगिताओं में संस्थान के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं शोधार्थियों ने बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया। महानिदेशक, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् द्वारा हिन्दी भाषा में कार्य करने वालों को प्रोत्साहित करने हेतु उनके द्वारा हिन्दी में किये गए वर्षवार कार्यों के आधार पर हिन्दी पखवाड़ा के दौरान उनके उत्कृष्ट कार्य हेतु पुरस्कार तथा प्रशस्ति पत्र दिए जाने के निर्णयानुसार संस्थान के श्री आशुतोष कुमार पाण्डेय, सहायक एवं श्री दिनेश प्रसाद, कनिष्ठ लिपिक का चयन कर पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया।

वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन

❋ ❋ ❋

वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद में राजभाषा गतिविधियाँ

राजभाषा हिन्दी के समग्र प्रचार – प्रसार हेतु संस्थान में दिनांक 14 सितम्बर से 20 सितम्बर, 2018 तक हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया गया। इस क्रम में श्री पंकज सिंह, वैज्ञानिक–'बी' एवं हिन्दी अधिकारी (प्रभार), वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद ने हिन्दी दिवस 14 सितम्बर 2018 पर कई प्रतियोगिताओं जैसे टिप्पणी लेखन, स्लोगन एवं वैज्ञानिक रिक्त स्थानों को पूर्ण करें, की शुरुआत की। इस मौके पर माननीय गृहमंत्री जी के संदेश को सभा में पढ़ा गया साथ ही साथ सभा में मौजूद कर्मचारीगण एवं शोधछात्रों को राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन से संबन्धित अधिनियम 1963 और राजभाषा नियम 1976 के बारे में जानकारी दी गई। प्रतियोगिता में कर्मचारीगण एवं शोधछात्रों नें भाग लिया।

प्रतियोगिता में भाग लेते कर्मचारी एवं शोधछात्र

हिन्दी सप्ताह के समापन समारोह के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों के साथ संस्थान के अधिकारियों तथा कर्मचारियों की एक औपचारिक बैठक भी दिनांक 20 सितम्बर, 2018 को आयोजित की गई। बैठक की अध्यक्षता श्री डी. जयप्रसाद, भा.व.से., निदेशक एवं अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति, वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद द्वारा की गई। निदेशक महोदय द्वारा हिन्दी में आदेश पत्र, ज्ञापन और टिप्पणियों की संख्या को बढ़ाने पर ज़ोर दिया गया तथा पिछले कुछ समय से हो रहे हिन्दी में कार्यो की प्रशंसा भी की गई। श्री प्रवीण एच. चव्हाण, वैज्ञानिक–'जी' ने सभी कर्मचारियों से कहा कि वे हिन्दी में काम करने का अधिक प्रयास करें ताकि हिन्दी में दिये गए लक्ष्यों को संस्थान द्वारा प्राप्त किया जा सके।

सभा को संबोधित करते हुए माननीय निदेशक महोदय

डॉ. रत्नाकर जौहरी, भा.व.से एवं वन संरक्षक ने कहा कि हिन्दी हमारे विविधता भरे देश को एकजुट करने का काम करती है और हमें इस ओर ध्यान देने की जरूरत है। पंकज सिंह, वैज्ञानिक–'बी' एवं हिन्दी अधिकारी (प्रभार), ने सभा को प्रतियोगिताओं और उनके विजेताओं के बारे में बताया। निदेशक महोदय के हाथों से विजेताओं को इनाम वितरित किया गया।

डॉ. एस. पटनायक, वैज्ञानिक–'एफ' ने हिन्दी अधिकारी, प्रतियोगिता के निर्णायक मण्डल एवं सभा में उपस्थित सभी को धन्यवाद दिया। इस मौके पर डॉ. आभा रानी, वैज्ञानिक–'ई', श्री अरुलराजन, उप–वन संरक्षक, श्री एम.बी. होनुरी, वैज्ञानिक–'सी', श्रीमती आशा कुमारी, ए.सी.टी.ओ भी उपस्थित रहे।

कर्मचारियों को पुरस्कार देते हुए निदेशक महोदय

❆❆❆

वानिकी

रेड्ड–प्लस हिमालय परियोजना: हिमालय में रेड्ड–प्लस क्रियान्वयन में अनुभव का विकास एवं उपयोग

डॉ. आर.एस. रावत एवं श्री. वी. आर. एस. रावत
भा.वा.अ.शि.प., देहारादून

विश्व में आज जलवायु परिवर्तन एक महत्वपूर्ण मानव जनित वैश्विक पर्यावरणीय चुनौती बन चुका है तथा इसे मानवजाति के अस्तित्व के लिए एक खतरे के रूप में माना जा रहा है। जलवायु परिवर्तन से प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्यान्न उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव भी आवश्यंभावी है। जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौता, वैश्विक औसत तापमान को पूर्व–औद्योगिक क्रांति स्तरों से 2 डिग्री सेल्सियस नीचे नियंत्रित करने का लक्ष्य तथा इसे 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने के प्रयासों का अनुसरण करते हुए निर्धारित करता है। हाल ही में जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (IPCC) ने 1.5 डिग्री सेल्सियस वैश्विक तापन पर अपनी विशेष रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया कि दुनिया पहले ही 1 डिग्री सेल्सियस गर्म हो चुकी है। जिसके परिणामस्वरूप, जलवायु परिवर्तन पृथ्वी के चारो ओर परिस्थितिकी तंत्र, व्यक्तियों तथा उनकी आजीविका को प्रभावित कर रहा है और वैश्विक तापमान को 1.5 डिग्री सेल्सियस पर सीमित किया जाना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन एवं रेड्ड–प्लस : निर्वनीकरण तथा वन निम्नीकरण से उत्सर्जन में कमीं तथा वन संरक्षण का महत्व, वनों का संवहनीय प्रबंधन तथा वन कार्बन भंडारों की वृद्धि को सामूहिक रूप से रेड्ड–प्लस के नाम से जाना जाता है, यह संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि (UNFCCC) के अंतर्गत विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण कार्यक्रम है। रेड्ड–प्लस के कार्यान्वयन से एक ओर वनों द्वारा कार्बन डाई ऑक्साइड तथा अन्य ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमीं तथा दूसरी ओर वनों द्वारा कार्बन पृथक्करण में वृद्धि होगी। कार्बन अभिग्रहण तथा भंडारण के अतिरिक्त रेड्ड–प्लस के अन्य सह–हितलाभों में जैवविविधता संरक्षण के स्तर में वृद्धि, पारितंत्र सेवाओं में सुधार तथा समुदायों की आजीविका सुदृढ़ करना आदि शामिल है।

भारत में वन संरक्षण एक परंपरा रही है तथा यह देश की वन नीतियों, अधिनियमों तथा नियमावलियों में प्रचुरता से प्रतिबिंबित होती है। वैश्विक स्तर पर निर्वनीकरण तथा वन निम्नीकरण ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन का तीसरा सबसे बड़ा स्रोत है। भारत उन कुछ विकासशील देशों में से एक है, जहाँ वन क्षेत्र कार्बन डाई ऑक्साइड का शुद्ध निमज्जक (Net sink of carbon dioxide) है।

रेड्ड–प्लस हिमालय परियोजना : भारतीय हिमालय क्षेत्र देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 17% है तथा यह वन आच्छादन एवं स्थानिक वनस्पति और जीव–जन्तुओं में काफी सम्पन्न है। भारत की प्रमुख नदियों यथा गंगा, यमुना तथा ब्रह्मपुत्र आदि का उद्गम भी हिमालय क्षेत्र से होता है। भारतीय हिमालय क्षेत्र के निवासी अपनी आजीविका के लिए व्यापक रूप से वनों पर निर्भर हैं। वनों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का हिमालय क्षेत्र के वन–आधारित स्थानीय समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना आवश्यंभावी है। समुदाय नियंत्रित तथा प्रबंधित वनों में रेड्ड–प्लस कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु प्रचुर अभिप्राय एवं अवसर हैं। अंतरराष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केन्द्र

(ICIMOD), काठमांडू (नेपाल) तथा जर्मन अंतरराष्ट्रीय सहयोग (GIZ) द्वारा चार हिन्दु–कुश हिमालयी देशों, नामतः भूटान, भारत, म्यांमार तथा नेपाल के साथ सहभागिता में संयुक्त रूप से **'रेड्ड–प्लस हिमालय परियोजना'** को कार्यान्वित किया गया है। दक्षिण–दक्षिण सहयोग (South-South Cooperation) के माध्यम से परियोजना मुख्यतः रेड्ड–प्लस पर क्षमता विकास पर केन्द्रित है। भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (भा.वा.अ.शि.प.) राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वन व जलवायु परिवर्तन संबंधी विषयों पर महत्वपूर्ण योगदान कर रही है। भा.वा.अ.शि.प. को भारत में ट्रांसबाउण्ड्री रेड्ड–प्लस हिमालय परियोजना कार्यान्वयन के एक परियोजना कार्यान्वयन एजेंसी के रूप चुना गया। परियोजना के परिणामस्वरूप विभिन्न स्तरों पर हितधारकों की क्षमता में वृद्धि तथा ज्ञान परक उत्पादों का विकास हुआ।

मिजोरम में रेड्ड–प्लस हिमालय परियोजना के अंतर्गत गतिविधियां : इस परियोजना के क्रियान्वयन हेतु मिजोरम राज्य को पथप्रदर्शी राज्य के रूप में चुना गया। परियोजना का आरंभ जनवरी 2016 में आइजॉल (मिजोरम) में आयोजित एक परियोजना सूत्रपात कार्यशाला के साथ हुआ। परियोजना को जिला मामित के 12 गाँवों में प्रारम्भ किया गया है जहाँ आय के मुख्य स्रोत परम्परागत कृषि पद्धतियां, सूअर–पालन तथा मुर्गीपालन है। अधिकांश स्थानिक समुदाय ईंधन काष्ठ के एकत्रीकरण, चारे तथा अन्य वन उत्पादों के लिए वनों पर निर्भर हैं। सम्पूर्ण पूर्वोत्तर की भांति मिजोरम में वन एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं तथा यहां वन एवं वृक्ष आच्छादन 18653 वर्ग कि.मी. क्षेत्र है। बांस मिजोरम का एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है तथा यह इसके भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 31% है। राज्य के सामाजिक–आर्थिक विकास में बांस का मुख्य योगदान है। राज्य में बांस की लगभग 34 प्रजातियां चिह्नित की जा चुकी हैं जिनमें से *मेलोकेन्ना बैसीफेरा* को स्थानीय रूप से मौतक के नाम से जाना जाता है तथा यह राज्य के कुल बांस संसाधन का लगभग 77% है। राज्य के 5 सामान्य बाँस प्रजातियों की वृद्धि तथा उपज का अध्ययन उनके जैवपुंज आकलन हेतु बायोमास समीकरण के विकास के लिए किया गया। आइजॉल, (मिजोरम) में बांस की वृद्धि तथा उपज अध्ययन के लिए एक प्रदर्शन भू–खंड भी स्थापित किया गया।

परियोजना ने विभिन्न ज्ञान उत्पाद भी सृजित किए जैसे**'स्टॉक टेंकिग ऑफ रेड्ड–प्लस इन इंडिया'** पर अध्ययन रिपोर्ट ने भारत में रेड्ड–प्लस हेतु तैयारियों की वस्तु स्थिति तथा रेड्ड–प्लस तत्परता को प्रमुखता से स्पष्ट किया। **'स्कोपिंग स्टडी फॉर रेड्ड–प्लस' 'द् कैलाश सैक्रेड लैंडस्केप'** में भारतीय कैलाश भू–परिदृश्य क्षेत्र में रेड्ड–प्लस क्रियान्वयन की संभाव्यता पर अध्ययन किया गया। परियोजना के अंतर्गत रेड्ड–प्लस के क्रियान्वयन हेतु राज्य वन विभागों, अनुसंधान सस्थानों, विश्वविद्यालयों, स्थानीय समुदायों तथा गैर–सरकारी संगठनों की क्षमता में वृद्धि हेतु अनेक क्षमता विकास कार्यक्रम तथा कार्यशालाएं आयोजित की गयीं। मिजोरम में जिला मामित के पथप्रदर्शी परियोजना क्षेत्र के अंतर्गत सभी गाँवों में स्थानीय समुदायों तथा अन्य हितधारकों हेतु रेडड् प्लस 'मापन, प्रतिवेदन तथा सत्यापन' पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए। विभिन्न हितधारकों के लिए रेड्ड–प्लस मापन, प्रतिवेदन तथा सत्यापन पर प्रशिक्षण पुस्तिका तैयार की गई तथा हितधारकों को प्रशिक्षण कार्यक्रमों के दौरान वितरित की गई। स्थानीय समुदायों को रेड्ड–प्लस मानक, प्रतिवेदन तथा सत्यापन पर अंग्रेजी तथा मिजो भाषाओं में पुस्तिकाएं तैयार करके वितरित की गई।

भा.वा.अ.शि.प., देहरादून में अगस्त 2016 में 'राष्ट्रीय रेड्ड–प्लस कार्यनीति तथा भारत के लिए कार्य योजनाः मुद्दे एवं चुनौतियां' पर एक कार्यशाला आयोजित की गई। गुवाहाटी (असम) में उत्तर–पूर्व भारत के लिए 'राष्ट्रीय रेड्ड–प्लस कार्यनीति पर क्षेत्रीय हितधारक, परामर्शी तथा क्षमता निर्माण कार्यशाला'' दिसंबर 2017 में आयोजित की गई। इन विचार–विमर्श कार्यशालाओं की विषयवस्तु तथा संस्तुतिओं ने भारत की ''राष्ट्रीय रेड्ड–प्लस रणनीति'' को बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परियोजना के

क्रियान्वयन के दौरान भा.वा.अ.शि.प., देहरादून ने देश के लिए राष्ट्रीय रेडड् प्लस रणनीति 2018 तैयार की, जिसका विमोचन डॉ. हर्षवर्धन, माननीय कैबिनेट मंत्री, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार के कर कमलों द्वारा 30 अगस्त, 2018 को नई दिल्ली में हुआ।

भारत के उत्तर–पूर्व राज्यों में रेड्ड–प्लस क्रियान्वयन में वृद्धि हेतु, एक 'रेड्ड–प्लस कार्य समूह' स्थापित किया गया जिसका सचिवालय वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट में स्थापित किया गया है। कार्यकारी समूह रेड्ड–प्लस के लिए एक सूचना केन्द्र के रूप में कार्य कर रहा है। मिजोरम तथा उत्तराखण्ड राज्यों के लिए ''राज्य रेड्ड–प्लस कार्य योजना'' बहु हितधारकों की परामर्शी प्रक्रिया के द्वारा तैयार की गयी। इन कार्य योजनाओं का उद्देश्य राज्यों में निर्वनीकरण के कारकों तथा वन निम्नीकरण एवं वनों के संवहनीय प्रबंधन को संबोधित करने हेतु अपनाये जाने वाले विभिन्न क्रिया कलापों की संस्तुति की गई है ताकि राज्यों में स्वस्थ वनों का विकास हो सके।

स्थानीय समुदायों की आजीविका उन्नयन : परियोजना के अन्तर्गत स्थानीय समुदायों के परामर्श से मिजोरम राज्य के लिए निर्वनीकरण तथा वन निम्नीकरण के कारकों के संबोधन हेतु रणनीतियां विकसित की गई हैं। झूम कृषि भू–खंडों का पुनरूद्धार, बागवानी संबंधी नकदी फसलों का प्रारंभन, सीढ़ीदार कृषि, आच्छादित कॉफी रोपण, उद्यमशीलता का विकास, रोजगार सृजन के अवसर तथा एल.पी.जी. की नियमित आपूर्ति जैसे क्रियाकलापों से रहन–सहन के स्तर में परोक्ष सुधार के साथ–साथ राज्य में स्थानीय समुदायों के आर्थिक कल्याण की संभावनायें हैं तथा यह राज्य में वनों के संरक्षण में भी लाभकारी होगा।

क्षमता निर्माण प्रशिक्षण कार्यशाला का एक दृश्य

परियोजना गाँवों में हल्दी एक प्रमुख नकदी फसल के रूप में उगायी जाती है तथा स्थानीय समुदायों के आय सृजन में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कच्ची हल्दी को सुखाने के लिए सौर–शुष्कक तथा पाक–इकाई के साथ हल्दी प्रसंस्करण इकाई गाँव वासियों को प्रदान की गई है जो कि स्थानीय समुदायों के आय सृजन में योगदान कर रही है। सौर शुष्कक ने कच्ची हल्दी को सूखने में लगने वाले समय को कम किया है। पाक–इकाई ने कच्ची हल्दी को पकाने के लिए ईंधन काष्ठ की खपत में कमी की है। यह आधुनिक सुविधा स्थानीय समुदायों को अपने स्थायी खेतों में अधिक हल्दी उत्पादन के लिए प्रेरित कर रही है। आच्छादित कॉफी प्रदर्शन रोपणियों को भी सामुदायिक वन भूमियों में, स्थानीय समुदायों को वैकल्पिक आय–सृजन क्रियाकलापों तथा झूम कृषि के विस्तार को कम करने के उदद्श्यों से स्थापित किया गया है। परियोजना क्षेत्र से कृषकों के बहिमुखीकरण भ्रमण, पड़ोसी राज्य मेघालय के स्थायी प्रकार के सफल कृषि मॉडलों के प्रदर्शन हेतु आयोजित किए गए।

हल्दी प्रसंस्करण इकाई

वनों से ईंधन काष्ठ एकत्रीकरण को वन निम्नीकरण के द्वितीय मुख्य कारक के रूप में चिह्नित किया गया है। उन्नत ईंधन बचत हेतु चूल्हों के उपयोग तथा लाभ पर प्रशिक्षण प्रदान करने के पश्चात, उन्नत चूल्हों को परियोजना गाँव चुगतलांग के स्थानीय

समुदायों को वितरित किया गया। गाँव में अब प्रति परिवार काष्ठ ईंधन खपत 30 कि.ग्रा. से घटकर 5–6 कि.ग्रा. प्रति दिन तक हो गयी है।

अंतरराष्ट्रीय मंच पर अनुभव साझा करना : ट्रांस–बांउड्री रेड्ड–प्लस हिमालय परियोजना, क्षेत्र में परियोजना सहभागियों को क्षेत्र में एक साथ कार्य करने, एक दूसरे के अनुभवों से सीखने तथा वन कार्बन भंडारों के संरक्षण एवं वृद्धि के लिए लक्षित अपनी सामूहिक कार्रवाई को त्वरित करने का अवसर भी प्रदान करती है। भा.वा.अ.शि.प. ने आई.सी.आई.एम.ओ.डी. तथा जी.आई.जेड. के सहयोग के साथ परियोजना सहभागी देशों को संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि (UNFCCC) की विभिन्न वार्षिक बैठकों (COP) में वैश्विक समुदाय के साथ परियोजना क्रियान्वयन के अनुभवों के आदान–प्रदान करने का अवसर प्रदान किया है। सहभागी देशों ने संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि (UNFCCC) की इक्कीसवीं, बाईसवीं, तथा तेईसवीं वार्षिक बैठक (COP-21,22 & 23) के दौरान रेड्ड–प्लस परियोजना के क्रियान्वयन में अपने

राज्य रेड्ड प्लस कार्यान्वयन योजना, मिजोरम

अनुभव तथा ज्ञान को वैश्विक मंच पर साझा किया। भारत की रेड्ड–प्लस रणनीति में उल्लिखित क्रियाकलापों के प्रारम्भिक क्रियान्वयन में रेड्ड प्लस हिमालय परियोजना के अनुभव अति लाभकारी होंगे परियोजना क्रियान्वयन से विभिन्न स्तरों पर क्षमता वृद्धि, रेड्ड–प्लस उत्कृष्ट प्रकाशनों के रूप में ज्ञान वर्धक उत्पादों का विकास हुआ। परियोजना द्वारा भारत में रेड्ड–प्लस के क्रियान्वयन हेतु एक सार्थक माहौल बनाने में पहल हुई।

❁ ❁ ❁

रोज सवेरे रवि आता है
दुनिया को दिन दे जाता है
लेकिन जब तम इसे निगलता
होती जग में किसे विकलता
सुख के साथी तो अनगिन हैं
लेकिन दुःख के बहुत कठिन हैं

सौ बातों की एक बात है।

– रमानाथ अवस्थी

उत्तराखण्ड की पादप विविधता

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, डॉ. अनूप चंद्रा,
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून
डॉ. मनीष कुमार
भा.वा.अ.शि.प., देहारादून

जैवविविधता

अगर हम सरल भाषा में कहें तो जैवविविधता का मतलब है पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी प्रकार के सूक्ष्मजीव, जीव–जन्तु एवं पेड़ पौधे जो कि जल, जमीन से लेकर वायु तक में व्यापक रूप से फैले हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि जैविक संरचनाओं का यह अद्भुत संसार जो धरती पर पाये जाने वाले सभी प्रकार के वातावरण में फैले हुए हैं, चाहे वह बर्फ से ढकी पर्वत श्रृंखलायें हों, या गरम पानी के झरने, यहाँ तक कि नमक से भरे समुद्र भी, इनके विविध रूप वर्षा वनों में भी पनपते देखे जा सकते हैं। सभी जगह जैवविविधता अपने रंगबिरंगे अद्भुत रूपों में मौजूद है। मोटे तौर पर धरती पर इस समय कुल जैवविविधता एक करोड़ से ड़ेढ करोड़ के बीच मापी गयी है। इनमें से अभी तक केवल 12 लाख प्रजातियों को ही वैज्ञानिक रूप से श्रेणीबद्ध किया जा सका है। वैज्ञानिको का यह मानना है कि अभी कुल 86 प्रजातियाँ खोजी जानी बाकी हैं। साथ में यह भी आकलित किया गया है कि तकरीबन रोज 100 प्रजातियाँ पृथ्वी से विलुप्त भी होती जा रही हैं। पृथ्वी के अगर 4.5 अरब पुराने इतिहास की बात करें तो हम यह पायेंगे कि पुरानी प्रजातियाँ विलुप्त होती रहती हैं और नयी प्रजातियों का उद्भव होता रहता है। जैवविविधता की विषमता एवं मानव जीवन में उसकी भूमिका को देखते हुए ही संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2011–2020 के दशक को जैवविविधता दशक घोषित किया है।

पादप विविधता

पादप धरती को जीवंत बनाने की सबसे अहम कड़ी हैं। यह पर्यावरण को केवल हरा–भरा ही नहीं बनाते बल्कि जीवनदायिनी ऑक्सीजन का वातावरण में प्रसार भी करते हैं। जैसा कि हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं धरती पर जहां भी जीवन है वहाँ के अधिकतर भागों में पादपों का संसार उपस्थित है। इनमें सूक्ष्मजीवी शैवाल से लेकर लाईकेन, ब्रायोफाइटस, टेरिडोफाइटस, जिम्नोस्पर्म एवं पुष्पीय पौधे शामिल हैं। वानस्पतिज्ञों के आकलन के अनुसार पृथ्वी पर कुल ज्ञात पादपों की संख्या लगभग 3 लाख है। भारत की बात करें जो कि दुनिया के सत्रह उच्च जैव विविधिता वाले क्षेत्रों में से एक है, जिनमें उच्च हिमालयी बर्फीले रेगिस्तान से लेकर राजस्थान के शुष्क रेगिस्तान, शंकुधारी वन, वर्षावन, मेंग्रोव, घास के मैदानों से लेकर, झीलें, प्रायद्वीप क्षेत्र एवं पठारी भाग, तटीय एवं समुद्री पारिस्थितिक तंत्र शामिल हैं, की कुल पादप विविधता तकरीबन 47000 से अधिक है। इनमें सर्वाधिक संख्या पुष्पीय पादपों की है जो कि तकरीबन 18000 हैं, इसके बाद कवक आते हैं जिनकी संख्या लगभग 15000 है।

उत्तराखण्ड की पादप विविधिता

उत्तराखण्ड की बात करें तो यह सच में पादपों की देवभूमि ही है। यह राज्य भारत के उत्तर में हिमालय की गोद में बसा प्राकृतिक सम्पदा की दृष्टि से एक समृद्ध प्रदेश है। यहाँ का लगभग दो–तिहाई भाग वनों से ढका है।

भौगोलिक बनावट के अनुसार उत्तराखण्ड की वनस्पतियों को पाँच बड़े प्रकारों में बाँट सकते हैं–

1. उप–उष्ण मानसूनी वन क्षेत्र
2. शीतोष्ण मानसूनी वन
3. निचले अल्पाइन या शीत–शीतोष्ण वन
4. शीत कटिबंधीय या अल्पाइन वन
5. घास के मैदान

हम जैसे–जैसे इस प्रदेश के निचले क्षेत्रों जैसे तराई एवं भाबर की तरफ से शुरू करते हैं, वनस्पतियों का अनोखा संसार हमसे रूबरू होने लगता है जिनमें पलाश, सिद्ध, सैन, साल, पापड़ी, शीशम, अमलताश, पीपल, बरगद, आदि शामिल हैं एवं ज्यों–ज्यों ही हम ऊँचाई की ओर बढ़ते हैं, त्यों–त्यों वनस्पति के प्रकारों में विभिन्नता देखने को मिलती है जिनमें प्रमुख हैं देवदार, चीड़, बांज, थुनेर, खरसू और मोरु ओक, बुरांश, पाँगर, अखरोट और भोजपत्र। जहाँ पर पेड़ मिलने खत्म हो जाते हैं वहाँ पर घास के मैदान शुरू हो जाते हैं जिनमे रंग बिरंगे पुष्पों की विविध प्रजातियाँ मिलती हैं। उत्तराखंड की विविधता परक जलवायु ही यहां की वानस्पतिक विविधिता का कारण है। यहाँ पर वनस्पतियों की कुल 7050 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इनमें 5400 प्रकार के पुष्पीय, 540 प्रकार के लाईकेन, 470 प्रकार के ब्रायोफाएइट, 365 प्रकार के टेरिडोफाइट पादप शामिल हैं। अगर सुंदर पुष्पीय पादप ऑर्किड्स की बात करें तो प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में इनकी विविधता लगभग 470 है। यहाँ की वनस्पति में अनेक दुर्लभ प्रकार की जड़ी–बूटियां एवं सजावटी प्रकार की वनस्पतियाँ तो शामिल हैं ही परंतु आप यहाँ पहाड़ी बांसो की प्रजातियों को भी नहीं भूल सकते हैं जिन्हे स्थानीय भाषा में रिंगाल कहा जाता है जो की पहाड़ की जीविका का एक साधन भी हैं। बुरांश या रोडोडेंड्रोन यहाँ का राजकीय वृक्ष है तो ब्रम्हकमल राजकीय पुष्प।

उत्तराखण्ड की दुर्लभ प्रजातियां

यहाँ पायी जाने वाली कुल प्रजातियों में से 120 प्रजातियाँ पूरी दुनिया में केवल उत्तराखंड में ही पायी जाती हैं, जिनमें प्रमुख हैं : चिमनोबंबुसा जौसरेंसिस *(Chimonobambusa jaunsarensis)*, एसर ओसमस्टोनी *(Acer osmastonii)*, बरबेरीस लम्बेर्टी *(Berberis lambertii)*, कैंपानुला वाटियाना *(Campanula wattiana)*, ट्रैकीकापस टैकिल *(Trachycarpus takil)*, एरिया ऑक्सीडेंटलिस *(Araria occidentalis)*, पिटोस्पोरम एरिओकार्पम *(Pittosporum eriocarpum)*, कैटामीक्सिस बैक्राइरेड्स *(Catamixis baccharoides)*, जबकि *120* प्रजातियाँ दुर्लभ प्रजातियों की श्रेणी में आती हैं, इन दुर्लभ प्रजातियों में अधिकतर उच्च हिमालीय घास के मदानों में पायी जाती हैं जिनमें प्रमुख हैं थुनेर *(Taxus baccata)*, मीठा विष *(Aconitum heterophyllum)*, तिमरु *(Zanthoxylum। rmatum)*, नागछत्री *(Trillium govanianum)*, सत्वा *(Paris polyphylla)*,

बचनाग (कलिहारी) *(Gloriosa superba)*

वृद्धि *(Habenaria intermedia)*

कूट *(Sasurea costus)*, थाकिल पाम *(Trachycarpus takil)*, कुटकी *(Picrorhiza kurrooa)*, जटामासी *(Nardostachys jatamasi)*, चिरायता *(Swertia chirayita)*, बन लहसुन *(Allium wallichii)*, पथरचट्टा *(Bergenia ciliata)*, मीठा विष *(Aconitum balfourii)*, चोरु *(Angelica glauca)* जंगली ककड़ी *(Podophyllum hexandrum)*, हथजड़ी *(Dactylorhiza hatagira)*, बचनाग (कलिहारी) *(Gloriosa superba)*, किलमोड़ा *(Berberis Asiatica)*, ब्लू पॉपी *(Meconopsis Aculeata)*, बालछड़ी *(Armenia benthomi)* मेदा *(Polygonatum verticillatum)*, महामेदा *(Polygonatum cirrhifolium)*, रिद्धि *(Habenaria edgeworthii)*, वृद्धि *(Habenaria intermedia)*, ककोली (*Roscoea purpurea)*, जीवक *(Malaxis muscifera)*, सर्पगंधा *(Rauwolfia serpentina)* आदि।

जलवायु परिवर्तन की वजह से इनके वासस्थान पर प्रभाव

दुनिया में हो रहे जलवायु परिवर्तन का बहुत बड़ा असर पादप प्रजातियों पर भी पड़ा है। निचले क्षेत्रों में पायी जाने वाली प्रजातियाँ बढ़ते तापमान की वजह से ऊपर की तरफ बढ़ती जा रही हैं। उच्च हिमालयी क्षेत्रों के घास के मैदान, जिन्हे बुग्याल भी कहा जाता है, आज जलवायु परिवर्तन के कारण खतरे में हैं। बुग्यालों में धीरे–धीरे झाड़ीदार पौधे, शाकीय पादपों का स्थान लेते जा रहे हैं। इसके अतरिक्त विदेशी प्रजातियों का भी धीरे–धीरे यहाँ के वनों में तेजी से अतिक्रमण हो रहा है जिनमे से लैंटाना *(Lantana camara)* एवं कॉंग्रेस ग्रास *(Parthenium hysterophorus)* प्रमुख हैं जिन्होने स्थानीय प्रजातियों को हटा कर अपना प्रभुत्व बना लिया है।

पथरचट्टा
(Bergenia ciliata)

ब्लू पॉपी
(Meconopsis aculeata)

थुनेर
(Taxus baccata)

किलमोड़ा
(Berberis asiatica)

रिद्धि
(Habenaria edgeworthii)

काकोली
(Roscoea purpurea)

उत्तराखण्ड की पादप विविधता पर संकट

उत्तराखंड की पादप विविधता पर संकट का मुख्य कारण मानव जनसंख्या का बढ़ना और वनों का क्षरण है। इसके अतरिक्त श्रद्धालुओं एवं पर्यटकों की साल दर साल बढ़ती संख्या भी इसका एक कारण है। नयी सड़कों एवं जलविद्युत परियोजनाओं के निर्माण ने भी यहाँ की पादप विविधता को बहुत क्षति पहुंचाई है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि यहाँ पायी जाने वाली बहुत सी पादप प्रजातियों में विभिन्न रोगों के निदान के लिए ढेरों औषधीय गुण हैं जिनका निरंतर दोहन ही इन वनस्पतियों के ह्रास का कारण है। ऐसा माना जाता हैं कि उपलब्ध सभी दवाओ में तकरीबन 25 भाग पौधों से ही प्राप्त होता है जबकि भारत में इसका आँकड़ा 50 से भी अधिक है। इन प्रजातियों के दुर्लभ होने का एक कारण इनके प्रकृतिक वासस्थान का लगातार सिकुड़ना भी है। इन औषधीय गुणों से भरपूर पादपों को वैज्ञानिक तरीकों से खेतों में उगाने की नयी विधियाँ ढूँढ़ी जा रही हैं जिनसे पहाड़ों पर रहने वाले आम आदमी भी इन्हें खेतों में उगा कर लाभ अर्जित कर सकें।

अगर हम इसकी समस्या के जड़ में जायें तो पता लगता है कि पहले उत्तराखण्ड के मध्य तथा उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पेड़–पौधों एवं वनस्पति प्रजातियों की विविधिता थी, जो न सिर्फ यहाँ की जलवायु को शुद्ध बनाती थी बल्कि इनकी जड़ें भारी बरसात में भी मिट्टी को बाँधे रखती थीं। मध्य हिमालयी क्षेत्रों में लगभग 1500 मी. से 3500 मी. की ऊँचाई तक बाँज, थुनेर, देवदार, रिंगाल बांस, पाँगर, बुराँस, खरसू, मोरू, भोजपत्र समेत विविध प्रकार के पेड़ पौधों की बहुतायत थी, जिनका फैला हुआ जड़–तंत्र मिट्टी को भूस्खलन तथा बाढ़ से बचाए रखता था। इसके अलावा इनसे गिरी पत्तियाँ धरती पर एक चादर का निर्माण करती थीं जो बारिश के पानी की भी निकासी सुनिश्चित करती थीं। अनगिनत छोटी–बड़ी वृक्ष प्रजातियों यहाँ तक कि ब्रायोफाईटस एवं टेरिडोफाईटस की विविधिता से भरपूर घने जंगल तेज बारिश की रफ्तार को भी काफी हद तक थाम लेते थे। इसी प्रकार गढ़वाल एवं कुमाऊँ के उच्च

मीठा विष
(Aconitum balfourii)

जटामांसी
(Nardostachys jatamasi)

सर्पगंधा
(Rauwolfia serpentina)

बन लहसुन
(Allium wallichii)

तिमरू
(Zanthoxylum armatum)

नागछत्री
(Trillium govanianum)

हिमालयी क्षेत्रों में स्थित घास के मैदानों (बुग्याल) में पौधों की अनगिनत घनी प्रजातियाँ बर्फ तथा बरसात दोनों के पानी को काफी हद तक सोख लेती थी। साथ ही ये वनस्पतियां काफी हद तक हिमालय की जलवायु, मौसम, तापमान, जैव–विविधता तथा पारिस्थितिकी तंत्र को भी संतुलित बनाए रखने में मदद पहुँचाती थी। परंतु ब्रिटिश शासन के मध्यकाल तथा उत्तरार्द्ध में ही यहाँ बड़े पैमाने पर पर्वतीय क्षेत्रों में पारंपरिक जंगलों की कटाई हुई एवं उसकी जगह व्यापारिक फायदे के लिए ईमारती लकड़ी एवं फर्नीचर हेतु शंकुधारी चीड़ के जंगल लगाये गए जो कि व्यावसायिक रूप से तो फायदेमंद थे मगर पर्यावरणीय तथा जनहितों की दृष्टि से काफी नुकसानदायक साबित हुए, जिसके परिणामस्वरूप यहाँ की स्थानिक प्रजातियाँ या तो विलुप्त हो गयीं या उनकी जनसंख्या में काफी कमी हो गयी। चीड़ का बड़े क्षेत्रों में प्रसार के कारण आज उत्तराखण्ड प्रतिवर्ष वन अग्नि से जूझ रहा है।

उत्तराखण्ड की संकटग्रस्त पादप प्रजातियों का संरक्षण

उत्तराखण्ड में पायी जाने वाली पादप विविधता के संरक्षण हेतु बड़े स्तर पर पादपों को वासस्थान में ही बचाए रखने के साथ ही जनभागीदारी की आवश्यकता है। वन अधिनियम के कठोर प्रावधानों को भली–भांति लागू कर भी इन पादपों के प्राकृतिक दोहन को रोका जा सकता है। उत्तराखण्ड के वन विभाग ने वनों में पाये जाने वाले सभी प्रकार के महत्वपूर्ण पेड़ पौधों के दोहन पर प्रतिबंध लगा रखा है जिसके लिए भारतीय वन अधिनियम के तहत कठोर कार्रवाई का भी प्रावधान है। विभाग दुर्लभ प्रकार के पौधों को चिन्हित कर उनके वासस्थान को सुरक्षित करने के लिए निरंतर प्रयासरत है।

इसके अतिरिक्त उत्तराखण्ड स्थित वैज्ञानिक संस्थाए जैसे वन अनुसंधान संस्थान, भारतीय वन सर्वेक्षण, भारतीय वन्यजीव संस्थान, वन विभाग के अनुसंधानवृत्त एवं दूसरी शैक्षिक संस्थाएं भी पादपों के संरक्षण में जुटी हुई हैं जिनमें वानस्पतिक बागीचों का निर्माण किया गया है जिनमे दुर्लभ प्रकार के पौधों को लाकर संरक्षित किया जा रहा है।

अंत में हम यही कहेंगे कि पादप संरक्षण की सफलता हम इन्सानों के ही हाथों में है। जनभागीदारी पादप संरक्षण में बड़ी भूमिका अदा कर रही है। चिपको आंदोलन इसका बड़ा उदारहण है। बड़ी संख्या में स्कूल कालेज के छात्र छात्राएं आज कल पादप संरक्षण के प्रति जागरूक हैं। प्रति वर्ष विभिन्न अवसरों पर बड़ी संख्या में पादपों का रोपण किया जाता है। देव भूमि का हरेला पर्व तो पादपों के लगाने के लिए ही प्रसिद्ध है।

❁❁❁

कौन चतुर चालाक है और कौन मासूम,
सब कह देता आपका, अपना ड्राइंगरूम।।

साँसों का चुकने लगा, खाता और हिसाब,
पढ़ी न पूरी जिंदगी, पढ़ते रहे किताब।।

इंसुलिन पौधा : *कॉस्टस स्पेसियोसस* कोएन.

(*Costus speciosus* Koen.)

श्री पंकज सिंह, शैक सय्यद जॉन एवं श्री प्रवीण एच. चव्हाण
वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद

समान्यतः हम अपने घरों में अक्सर लगने वाले सजावटी पौधों के बारे में कम जानकारी रखते हैं, जो न केवल सुंदर वरन औषधीय गुण भी रखते हैं। हम एक ऐसे ही सजावटी औषधीय पौधे *कॉस्टस स्पेसियोसस* की चर्चा यहाँ पर कर रहे हैं जिसको इंसुलिन पौधे के नाम से भी जाना जाता है और ऐसा इसलिए, क्योंकि मधुमेह रोगी द्वारा इसकी एक पत्ती का रोज सेवन करने से रक्त शर्करा नियंत्रित रहती है (मरीना, 2004)। यह जिंजीबीरेसी वर्ग का एक बहुवर्षीय पौधा है जो दक्षिण पूर्वी एशिया के साथ साथ भारत, श्रीलंका, और मलेशिया में भी पाया जाता है। यह वनों के अलावा सजावटी पौधे के तौर पर भी घरों की शोभा बढ़ाता है। इसके लाल रंग के तनों के वलय युक्त क्रम के कारण ही इसे अँग्रेजी में क्रीप या स्पाइरल जिंजर एवं हिन्दी में केबु नाम से पहचान की जाती है। यह अक्सर बरसात में उपजाऊ भूमि में छायादार स्थानों पर पाया जाता है। तना कलम विधि, प्रकन्द द्वारा, बीजों के साथ–साथ इसका ऊतक संवर्धन विधि द्वारा विस्तार किया जा रहा है। कॉस्टस जाति के अन्य पौधे जैसे *कॉस्टस पिक्टस, कॉस्टस इगनिस* इत्यादि भी प्रकृति में पाये जाते हैं।

इंसुलिन पौधाः *कॉस्टस स्पेसियोसस,* स्रोतः पंकज सिंह

इसकी जड़ों एवं पत्तियों में रक्त शर्करा या मधुमेह को नियंत्रित करने वाले रासायनिक तत्व मौजूद हैं। इसके आलवा इससे तैयार हर्बल चाय, पेय पदार्थ का उपयोग भी रक्त में शर्करा और कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को नियंत्रित करने में किया जाता है। *कॉस्टस स्पेसियोसस* की जड़ों में मौजूद डायोस्जेनिन और सेपोजेनिन जैसे स्टेराइडल तत्व इसे एक पादप जनित औषधि बनाते हैं। डायोस्जेनिन मुख्यतः ऊंची जगहों में उपस्थित डाइस्कोरिया प्रजाति से प्राप्त होता है, लेकिन कॉस्टस इस मामले में बेहतर है कि यह आसानी से मैदानी भागों से दोहित किया जा सकता है। डायोस्जेनिन का विशेष इस्तेमाल फार्मा सैक्टर में स्टेराइडल दवाइयों को बनाने में होता है जिनमे कोर्टिसोन एवं गर्भनिरोधक गोलियां प्रमुख हैं। डायोस्जेनिन के आलवा क्विनोन, टेकोफेरोल, इरेन्थ्रमीन, कोस्टुनोलाइड जैसे रासायनिक तत्व भी कॉस्टस में पाये जाते है जो इसे एक अच्छा औषधीय पादप बनाते हैं (मलबाड़ी और साथी, 2016)।

इसकी जड़ों में 2.25–3.37 प्रतिशत जबकि पत्ती, तनों और फूल में क्रमशः 0.37 प्रतिशत, 0.65 प्रतिशत और 1.21 प्रतिशत डायोस्जेनिन मौजूद है जो वातावरण और उगने के स्थान पर निर्भर करता है (बावरा और नरसिमचर्या, 2008)। इसकी जड़ों में सगंध तेल भी पृथक किए गए हैं जिनमे जेरूमबोन, अल्फा हुमलिन, कमफिन, अल्फा आमयरिन आदि अवयव प्रमुख हैं (थंबी और शफी, 2015)। अपने इन्ही रासायनिक तत्वों के कारण ही यह न केवल मधुमेहनाशी वरन प्रतिजीवाणु, प्रतिदाहक, तनावरोधी, दर्दनिवारक, ज्वरनाशक, कीटनाशी, प्रतिऑक्सीकारक भी है (शोबना और नायडू, 2000)।

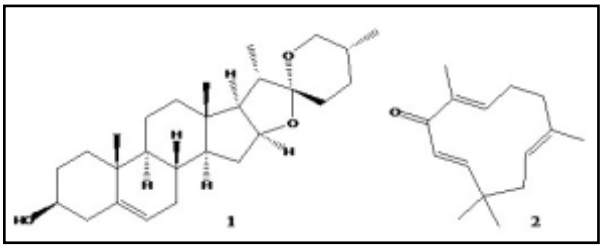

कॉस्टस स्पेसियोसस की जड़ के रासायनिक तत्व
1. डायोस्जेनिन 2. जेरूमबोन

कॉस्टस के औषधीय गुणों का उल्लेख दि आयुर्वेदिक फार्मेकोपिया ऑफ इंडिया के पांचवे खंड में भी मिलता है। अतः इन गुणो के कारण आयुर्वेद में इसकी जड़ों को मूत्ररोग, अपच, पीलिया, बुखार, अस्थमा, जलन, ख़ासी, त्वचा रोग इत्यादि के उपचार में दिया जाता है। इसकी जड़ों का इस्तेमाल सब्जी के रूप में, अचार के रूप में साथ ही इसकी पत्तियों और फूलों से बने पेय पदार्थ भी स्वास्थवर्धक हैं। आँख और कान के संक्रमण होने पर इसकी पत्तियों और तनों का रस देने से आराम मिलता है। अनुसंधान से यह बात भी सामने आयी है कि इसकी जड़ों में मौजूद जेरूमबोन अवयव कैंसर रोधी गुण रखते हैं। इस प्रकार हम कह सकते है कि *कॉस्टस स्पेसियोसस* एक महत्वपूर्ण औषधीय सजावटी पौधा है जिसमें अनेक औषधीय गुण विद्यमान हैं। डायोस्जेनिन और दूसरे महत्वपूर्ण तत्वों के कारण वनों में इस पादप का व्यापारिक दोहन काफी तेजी से हो रहा है जिससे इसके संकटग्रस्त श्रेणी में आने की आशंका बढ़ती जा रही है। अतः इसके संरक्षण और संवर्धन की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ पढ़ें :

1. मरीना बी. 2004. इंसुलिन प्लांट इन गार्डन. नैचुरल प्रॉडक्ट रेडियन्स. 3(5) : 349–350.

2. दि आयुर्वेदिक फार्मेकोपिया ऑफ इंडिया, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, डिपार्टमेंट ऑफ हेल्थ एंड फैमिली वेलफेयर, डिपार्टमेंट ऑफ आयुष, खंड–पांचए भाग–प्रथम.

3. मलबाड़ी और साथी. 2016. इंसुलिन प्लांट, *कॉस्टस स्पेसियोससः* ईथनोंबॉटनी एंड फार्मेकोलोजिकल अपडेट. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ करेंट रिसर्च इन बायोसाइंस एंड प्लांट बायोलोजी. 3(7) : 151–161.

4. बावरा, जे एच और नरसिमचर्या ए वी आर एल. 2008. एंटिहाइपरगलेसिमीक एंड हाइपो–लिपिडेमिक इफैक्ट ऑफ कॉस्टस स्पेसियोसस इन एलोक्सन इनदुस्ड डाईबिटिक रेट्स. फाइटोथेरापी रिसर्च। 22 : 620–626.

5. थंबी, एम और शफी, एम पी. 2015.राइज़ोम इसेंशियल ऑइल कंपोजिसन ऑफ कॉस्टस स्पेसियोसस एंड इट्स माइक्रोबियल प्रॉपर्टीस. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फार्मास्युटिकल रिसर्च एंड एलाइड साइंसेस. 4, 28–32.

6. शोबना, एस. और नायडू, के. 2000. एंटिऑक्सीडेंट एक्टिविटी ऑफ सिलैक्टेड इंडियन एस्पाइस. प्रोस्टाग्लेंडिस, लिउकोट्राईइंस एंड इसेंशियल फेटी एसिडस. 62:107–110

❋ ❋ ❋

पढ़ते अपना नाम ही, लिखते अपना नाम,
हम अपने ही इस कदर, अब हो गए गुलाम।।

कलिहारी : ''एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा''

श्री एस.एल. मीणा, श्री शैलेन्द्र सिंह राठौड़ एवं श्री एन.के. बोहरा
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

कलिहारी लिलिएसी कुल का सदस्य है। इसका वानस्पतिक नाम *ग्लोरीओसा सुपर्बा* है। ग्रामीण अंचल में रहने वाले लोग इसे 'कलह की जड़' के नाम से पुकारते हैं। इसका उपयोग महत्वपूर्ण दवाईयाँ बनाने में किये जाने के कारण ग्रामवासियों एवं वनवासियो के द्वारा अत्यधिक दोहन होने से इसकी व्यावसायिक खेती करना वर्तमान मे अनिवार्य है। खेती के हिसाब से *ग्लोरीओसा सुपर्बा* एवं *ग्लोरीओसा रयचिलड़ाना* प्रमुख प्रजातिया हैं।

कलिहारी का पुष्प (स्रोत : गूगल स्कॉलर)

कलिहारी एक लता प्रजाति का बहुवर्षीय, प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु में भौमिक कंद से निकलने वाला, प्रति वर्ष लता की लंबाई लगभग 10 से 15 फीट तक होती है। लता के भौमिक कंद का व्यास 1 से 3.5 से.मी., लंबाई 1 से 1.5 फीट तक, पत्तियाँ वृत्त रहित अदरक के समान 6.8 से.मी. लंबाई तथा 1.5 से.मी. चौड़ाई, पत्तियों के सिरे पर सूत्राकार घुमावदार तन्तु के समान रचना होती है जो कि लता को आरोहण में सहायता करती है। इसके फूल लाल (नारंगी) रंग के अत्यधिक मनमोहक, आकर्षक होते है जो कि अगस्त में खिलते हैं। फूल से फल बनने में कम ही समय लगता है अर्थात शरद ऋतु में फल प्राप्त होते हैं, प्रत्येक फल से लगभग 20 से 25 बीज प्राप्त होते हैं। इसके फल लगभग 2 से.मी. लंबाई के होते हैं। लता फल देने के पश्चात लगभग सूख जाती है।

जलवायु : ऊष्ण तथा नम जलवायु कलिहारी के लिए उपयुक्त है। जून–जुलाई से अक्टूबर–नवम्बर माह तक का फसल चक्र होता है।

भूमि : कलिहारी की खेती प्रायः सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है, परंतु यह ध्यान रहे कि मिट्टी का पी. एच. 5.5 से लेकर 7 तक हो, साथ ही जल निकासी की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए। बुवाई से पूर्व जिस भूमि पर कलिहारी रोपित करना है उस में 1 टन प्रति हैक्टेयर पकी गोबर की खाद डालकर जुताई कर लें। यह काम अप्रैल से मई माह में (इस समय जुताई के फलस्वरूप भूमि में उपस्थित हानिकारक जीवाणु एवं कवक तेज गर्मी से मर जाते हैं साथ ही मृदा भुरभुरी और वायवीय हो जाती है) हो जाना चाहिए। गोबर खाद के साथ यूरिया 100 कि.ग्रा., सुपरफॉस्फेट 25 कि.ग्रा. तथा 14 कि.ग्रा. पोटाश मिलाकर मिश्रण बना लेते हैं। इस मिश्रण के आधे भाग को भूमि की जुताई के समय तथा शेष बचे मिश्रण को फूल लगने से पूर्व डाल देना चाहिए।

जुताई के फलस्वरूप मिट्टी का मिश्रण यदि एक समान नहीं हुआ हो तो पुनः दिशा बदलकर जुताई करें तथा ढेलों को फोड़ने के लिए लाटा चलवा दें। तत्पश्चात 60 से 70 से.मी. के अंतराल में मेढ़े बनाकर पानी की निकासी के लिए नालियाँ बना देनी चाहिये।

बुआई : कलिहारी की व्यावसायिक खेती करने के लिए बुआई प्रायः कन्दों के द्वारा की जा सकती है। कन्दों को रोपण भूमि में बनी मेढ़ों पर 70से.मी. x 70से.मी. दूरी के अनुपात पर गढ़ढ़ा करके लगा देते हैं। इसके लगाने हेतु गढ़ढों की खुदाई कन्दों के आकार पर निर्भर करती

है। मुख्यतः यह ध्यान रखना जरूरी है कि कन्दों का भार 50 से 60 ग्राम तक होना चाहिए। अधिक भार वाले कन्दों की रोपण सामग्री से प्रथम वर्ष से ही बीज प्राप्त होने लगते हैं।

किसान यदि बीजों से फसल उगाना चाहें तो उसे 1मी. x 10मी. की क्यारी, जमीन सतह से कम से कम 1.5 फीट ऊंची बनाकर उसमें गोबर की पकी खाद, यूरिया, सुपरफॉस्फेट एवं पोटाश (50 कि.ग्रा., 2 कि. ग्रा., 1.5 कि.ग्रा. प्रति क्यारी) मिलाकर बीजों को वर्षा प्रारम्भ होने पर क्यारी में बुआई कर दें तथा एक वर्ष तक क्यारी में कन्दों को यथास्थिति में रहने दें। द्वितीय वर्ष में इन कन्दों को खोदकर वर्षा ऋतु में 60 से.मी. x 60 से.मी. की दूरी पर रोपित कर दें। रोपण हेतु गड्डों की खुदाई कन्दों के माप के अनुसार करें। आरोहण हेतु झाड़ियों, पेड़ों की सूखी डालियों को कन्दों के बगल में गाड़ दें ताकि लता को फैलने में आसानी हो। बीजों की प्राप्ति लता के फैलने पर निर्भर करती है।

सिंचाई : कलिहारी की फसल वर्षा ऋतु की फसल होने के कारण सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यदि भूमि कंकड़ीली हो तो आवश्यकतानुसार सिंचाई का प्रबंध कर लें।

खरपतवार निकालना : प्रायः यह देखा गया है कि खरपतवार निकालने से कन्दों के आयतन में बढ़ोतरी मिली है। चूंकि खरपतवार कन्दों को प्राप्त होने वाली भोजन सामग्री स्वयं ग्रहण कर लेते हैं अतः कन्दों का विकास रुक जाता है। खरपतवार निकालते समय यह ध्यान रखा जाये की कन्दों को चोट न पहुँचे क्योंकि चोट वाली जगह पर कवक का आक्रमण हो जाता है और कंद सड़ने लगता है।

फलों का एकत्रीकरण : पौधरोपण (जुलाई) के पश्चात अगस्त–सितम्बर में फूल लगते हैं। तथा अक्टूबर–नवम्बर में फल लगते हैं। कलिहारी के फल हल्के हरे रंग के होने (पकने) पर उन्हे तोड़ लेते हैं तथा 10–15 दिन तक छाया में सुखा लेते हैं। फलों से बीजों को निकाल कर अच्छी तरह से सुखाकर बोरों में भर लेते हैं। फलों के छिलकों को अलग बोरों में एकत्रित कर लेते हैं। कलिहारी के फलों का छिलका, बीज एवं कंद तीनों ही औषधीय गुणों से भरपूर होने के कारण बिकते हैं। फलों के पकने का काल 170 से 180 दिन तक का होता है।

कन्दों का उखाड़ना : कलिहारी से सतत 5–8 साल तक बीज प्राप्त करने के पश्चात कन्दों को उखाड़ लेना चाहिए। कन्दों को उखाड़कर, धोकर, छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर सुखाकर नमी रोधक कंटेनरो में एकत्रित कर लेते हैं।

कन्दों का शोधन : कन्दों को छोटे–छोटे टुकड़ो में तेज़ धारदार चाकू से काट लेते हैं। तत्पश्चात 12 से 24 घंटो तक गोमूत्र में डालकर रखते हैं, उसके बाद धूप में सुखा लेते हैं या उन टुकड़ो को नमक मिली हुई गाय के दही से बनी छांछ में भिगोकर रखें तथा दूसरे दिन सुखायें, यह क्रम तीन दिन तक कर लें। ध्यान रहे कि कलिहारी की गणना उपविष में की गई है, इसे बिना शोधन किये उपयोग में लेना वर्जित है।

उत्पादन दर : कलिहारी की खेती करने से प्रति हैक्टेयर 250–300 कि.ग्रा. बीज, 150–200 कि.ग्रा. छिलके तथा 2.5 से 3 टन सूखे कंद प्राप्त होते है। यह फसल बहुवर्षीय फसल है। इसे एक बार रोपित करने के बाद कन्दों को 5 से 7 वर्षो के बाद उखाड़कर सुखाकर बेचे जाते हैं। बीज प्रति वर्ष प्राप्त होते हैं।

बीज का भंडारण : कन्दों के निष्कासन के बाद स्वस्थ कन्दों को नमी रोधी, अंधेरे कमरे में बंद करके रख दिये जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियां आने पर यह (मई–जून) स्वयं ही अंकुरित होने लगता है। जुलाई माह में यह

कलिहारी की फली (स्रोत : गूगल स्कॉलर)

प्रस्फुटन तेज हो जाता है। उस समय इसे खेतों में रोप दिया जाता है।

बीजों का उपचार : कन्दों को मिट्टी में उपस्थित फंगस गलन रोग से ग्रसित करती है। इसलिए कन्दों (गांठों) को बाविस्टीन एवं मरकरी क्लोराइड के 0.1 के घोल से उपचारित करने के पश्चात बुआई करनी चाहिए।

हानिकारक कीटों से बचाव :

(1) रंग बिरंगी सूँडी :– पौधों को अत्यधिक नुकसान पहुंचाती है जिसके फलस्वरूप पौधा नष्ट हो जाता है। इसकी रोकथाम हेतु मोटासिड 0.2 का घोल बनाकर स्प्रे (छिड़काव) करना चाहिये।

(2) हरी सूँडी : यह कीट पौधों की हरी पत्तियों को खाता है, जिससे पौधा सूख जाता है। इसके बचाव हेतु दो सप्ताह के अंतराल से मोटासिड 0.2 के घोल का छिड़काव करना चाहिये।

(3) पत्तों का झुलसना : यह एक पेयोजेनिक बीमारी है, जिससे पौधे जले या झुलसे नजर आते हैं। बाद में पत्ते पीले हो जाते है। अंत में क्लोरोफिल पत्तों से समाप्त हो जाता है। इसके बचाव हेतु डाइथेन एम –45, 0.3 या कोटाफ 10 एम.एल., 1 लिटर पानी में मिलाकर सप्ताह में दो बार छिड़काव करना चाहिए।

(4) गलन रोग : यह रोग फंगस द्वारा होता है। इसके बचाव हेतु 0.2 बाविस्टीन का घोल बनाकर डालने से पौधों को बचाया जा सकता है। इस रोग से गाँठे सड़ने या गलने लगती है।

विशेषता :

कलिहारी अपने औषधि गुणों के कारण ही औषधियो की रानी कहलाती है। वैदिक काल से भारतीय इसकी विशेषताओं से परिचित हैं। इसका मूल निवास भारत ही है। यहीं से औषधीय एवं सौन्दर्य पौधों के प्रेमियो द्वारा विश्व के अनेक देशो में पहुँची है। खास तौर पर उष्णकटिबंधीय राष्ट्रों में यह अच्छी तरह से बढ़वार कर रही है। चरक संहिता, ऋग्वेद और यजुर्वेद में इसके महत्व, विशेषता एवं उपयोग का उल्लेख मिलता है। इसके फूलों के चित्र पुरातन चित्रकारों द्वारा महलों की दीवारों पर सुंदर कलात्मक रूप में बनाए गए हैं। आज भी बुरहानपुर में मुगलकाल में बनाए गए हमाम (जहां स्व. मुमताज बेगम स्नान करती थीं) में देखे जा सकते हैं। हमारे पौराणिक ग्रंथो, लोक–कथाओ, कविताओं एवं धार्मिक पुस्तकों में कलिहारी के गुणधर्मो की विस्तार से चर्चा की गई है। इसके अत्यधिक उपयोग होने के कारण अधिक दोहन होना तय था इसलिए औषधीय विज्ञान के ज्ञाताओं ने सर्वसम्मिति से प्रस्ताव पारित किया होगा कि यह घर के आस–पास नहीं लगाई जाये, इसके रोपण से घर में कलह होगा। उसी तारतम्य में आज भी इस बात का ध्यान भारत के ग्रामीण अंचलो में रखा जाता है कि कलिहारी घर के आसपास नहीं लगाई जाती है।

उपयोग :

(1) जोड़ो के दर्द में: कन्दों को धतूरे के पंचगव्य अफीम, अश्वगंधा, तमाख, जायफल एवं सोंठ, इन सभी को बराबर मात्रा मे लेकर पीस लिया जाता है। तत्पश्चात चार गुना तिल्ली का तेल व चार गुना पानी में मिलाकर तब तक उबालते है जब तक पानी पूर्णतः भाप बन कर उड़ जाये या जल जाये। अब इस तेल को छानकर काँच की बोतल में भर लें। स्नान करने के बाद धूप में बैठकर जोड़ो पर तेल मालिश करने से दर्द ठीक हो जाता है।

(2) गठिया वाय, वात पीड़ा में : इस रोग में रोगी का चलना, बिलकुल बंद हो जाता हैं। हाथ, पैर पूर्णतः जकड़ जाते है। हाथ, पैर की उंगलियों का स्वरूप विकृत हो जाता है। इस अवस्था में कन्दों को पीसकर बकरी के दूध में मिलाकर लेप लगाने से कुछ ही दिनो में रोग ठीक हो जाता है। या कंद, धतूरा फल व लहसुन को पीसकर सरसो के तेल में मिलाकर तब तक गर्म करें जब तक कि तेल गाढ़ापन ले ले, अब इस तेल को छानकर काँच की बोतल में रख लें। इससे जोड़ो की मालिश करने से अति शीघ्र लाभ मिलता है।

(3) मासिक धर्म : प्राय महिलाओं में माहवारी समय से पहले रुक जाती है। इस समय कन्दों को पीसकर मधुमक्खी का शहद व पिसा हुआ काला नमक इन तीनों को मिलाकर योनि द्वार पर लगाने से मासिक धर्म सुचारु रूप से आने लगता है।

(4) पालतू जानवर : इनके दस्त में रुकावट होती है तो उस समय पत्तों को पीसकर आटे में मिलाकर दाने के साथ देने से ठीक हो जाता है।

(5) बवासीर (भगंदर) रोग : कलिहारी कंद, सरसो के बीज, आक (मदार) का दूध, पीपर, सेंधा नमक को गोमूत्र में पीसकर मस्सों पर लगातार दस से पंद्रह दिनों तक लेप करने से यह रोग पूर्णतः ठीक हो जाता है। साथ ही यदि खूनी बवासीर हो तो कलिहारी की गांठ, धतूरे की जड़, पानी में पीसकर लेप करने से दस से पंद्रह दिन में ठीक हो जाता है।

(6) ट्यूमर या गांठ : कलिहारी की गांठ को पीसकर लेप करने से गांठ ठीक हो जाती है।

(7) कांटा, कील या लकड़ी का चुभना : यदि कोई भी बाहरी वस्तु किसी कारणवश शरीर के अंदर प्रवेश कर गई व अत्यधिक पीड़ा हो रही हो तो उस समय कलिहारी की गांठ को गोमूत्र या पानी में पीसकर तीन चार बार लेप करने से वस्तु शरीर से बाहर आ जाती है।

❁ ❁ ❁

अनगिन फूल नित्य खिलते हैं
हम इनसे हँस-हँस मिलते हैं
लेकिन जब ये मुरझाते हैं
तब हम इन तक कब जाते हैं
जब तक हममे साँस रहेगी
तब तक दुनिया पास रहेगी

सौ बातों की एक बात है।

– रमानाथ अवस्थी

भेखल (*प्रिंसेपिया यूटिलिस*): अल्पतर प्रयुक्त परंतु महत्वपूर्ण बहुपयोगी झाड़ीनुमा पौधा

डॉ जोगिंदर सिंह, श्री ज्वाला प्रसाद एवं श्री कुलदेश कुमार
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान – शिमला (हि.प्र.)

भूमिकाः भेखल *(प्रिंसेपिया यूटिलिस)* एक महत्वपूर्ण झाड़ीनुमा पौधा है, परंतु इसकी ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया है। इस प्रजाति की संख्या प्राकृतिक वास में धीरे–धीरे कम हो रही है। प्रायः यह पाया गया है कि सरकार, वन विभाग या किसी संबंधित संस्था द्वारा, वन क्षेत्र में या अन्य प्राकृतिक वास में उग रहे अधिकतर पौधों में से ज्यादा ध्यान केवल इमारती लकड़ी या अन्य आर्थिक महत्व वाली जड़ी–बूटियों में ही दिया जाता है तथा दूसरी ओर पारंपरिक रूप से महत्वपूर्ण वनस्पति प्रजातियों पर कोई खास ध्यान नहीं दिया जाता है। पारंपरिक रूप से हिमाचल प्रदेश के ग्रामीण परिवेश में भेखल का काफी महत्व रहा है। इसके अलावा पारिस्थितिकी में भी यह महत्वपूर्ण प्रजाति है। आधुनिकीकरण की वजह से पारंपरिक रूप से उपयोग की जाने वाली वनस्पति का उपयोग भी धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। वर्तमान स्थिति यह है कि बहुत सारी वनस्पति, जिसे पहले लोग खाद्य, औषधि या अन्य रूप में उपयोग करते थे, उनका वर्तमान में उपयोग नगण्य है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी अब वनस्पति प्रजातियाँ मुख्यतः चारा, ईंधन एवं इमारती लकड़ी के लिए ही उपयोग की जाती हैं और बहुत कम वैद्य जड़ी–बूटी को औषधि में उपयोग करते हैं। भेखल एक महत्वपूर्ण बहुपयोगी झाड़ीनुमा पौधा है, जो आधुनिकीकरण के कारण अपनी असली महत्ता खो रहा है परंतु फिर भी कई पिछड़े क्षेत्रों में इसका अभी भी महत्व है। अगर इस प्रजाति पर उचित ध्यान दिया जाए तथा इसकी उपयोगी क्षमता को प्रयुक्त किया जाए तो यह पौधा ग्रामीण आर्थिकी में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुये इस संक्षिप्त लेख मुख्यतः प्रजाति का विवरण, प्राकृतिक वितरण, प्रजनन, पारंपरिक उपयोग एवं पारिस्थितिक महत्व पर चर्चा की जा रही है।

सामान्य विवरण : भेखल एक झाड़ीनुमा कंटीला पौधा है तथा रोजेसी कुल से संबंधित है। इसका वानस्पतिक नाम *प्रिंसेपिया यूटिलिस* है। पौधे का नाम विद्वान जेम्स प्रिंसेप के नाम पर पड़ा जो एसियाटिक सोसाइटी कलकता के सचिव भी रहे। हिमाचल प्रदेश में स्थानीय भाषा मे इसे भेखल कहते हैं। पौधे की ऊंचाई 2 मीटर से 3.5 मीटर तक होती है। पौधे का तना भूरा हरा होता है तथा टहनियों पर 3 सेंटीमीटर तक लंबे कांटे होते हैं। पीले –सफ़ेद रंग के फूल, पत्ती तथा टहनी के जुड़ाव स्थल पर मार्च–अप्रैल में गुच्छे में लगते हैं। बैंगनी रंग के अंडाकार फल ग्रीष्म ऋतु में (मई –जून) में पकते हैं। फल दीर्घवृत्ताभ 1.3–1.8 x 1.0 सेंटीमीटर तक होता है।

प्राकृतिक वितरण : यह पौधा चीन, भारत, बांग्लादेश इत्यादि देशों में पाया जाता है। हिमालयन क्षेत्र में भेखल 1200– 3000 मीटर की ऊंचाई तक पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में यह शिमला, कुल्लू, चंबा, सिरमौर, मंडी एवं कांगड़ा के मध्यम से ऊंचाई वाले क्षेत्रों, मुख्यतः खुले स्थानों, नालों तथा झरनों के आसपास उगता है। देवदार जंगल में भी यह खुले स्थानों तथा ढलानों पर ही पाया जाता है। इससे यह स्पष्ट है की भेखल को सूर्य की रोशनी की अधिक आवश्यकता होती है। जिन क्षेत्रों में जल निकासी ठीक नहीं होती वहाँ पर भेखल ठीक से नहीं उग पाता है।

प्रजनन : भेखल के प्रजनन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। इसका प्रजनन मुख्यतः बीज द्वारा किया जाता है। बीज को 1–2 महीने तक ठंडा उपचार देने से अच्छी अंकुरण क्षमता होती है, प्रकृति में भी बीज जून जुलाई में जमीन पर गिर जाते हैं तथा सही

परिस्थितियाँ मिलने पर बसंत ऋतु में उगते हैं। प्राकृतिक रूप से यह पौधा अधिक नहीं उग रहा है तथा जो बीज उग जाते हैं उनका स्थापन ठीक से नहीं हो पाता है। शोध से यह भी पाया गया है कि सूर्य की अधिक रोशनी बीज अंकुरण को प्रभावित करती है। तना कलमों से इसे उगाना मुश्किल है। पौधशाला में उगाया पौधा एक साल में पौधरोपण के लिए तैयार हो जाता है। यहाँ जिक्र करना आवश्यक है कि भेखल को न तो वन विभाग और न ही किसी अन्य संस्था द्वारा नर्सरी में उगाया जाता है और इसका पौधरोपण भी नहीं किया जा रहा है।

भेखल के उपयोग : बहुपयोगी भेखल प्रजाति के मुख्य उपयोग निम्नलिखित हैं:

खाद्य तेल : इसके बीजों में लगभग 21% वसा तेल पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश में मुख्यतः शिमला, कुल्लू, मंडी, सिरमौर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में लोग तेल को खाने के लिए उपयोग करते हैं। इसका उपयोग स्थानीय लोगों द्वारा जैतून के तेल की भांति भी किया जाता है। इसकी खल को ग्रामीण क्षेत्रों में लोग ऊनी वस्त्र धोने के लिए भी उपयोग करते हैं। इसके अलावा खल को दुधारू गाय एवं भैंस को भी दिया जाता है।

तेल निकालने की विधि : पके फलों को एकत्रित कर टीन या किसी अन्य बर्तन मे भंडारण कर, उसमें कुछ पानी मिला दिया जाता है ताकि, फल गल जाये तथा बीज निकालने के लिए आसान हो जाएँ। एक हफ्ते के अंदर बीज को टीन में मसला जाता है तथा फल–गूदा को पानी से धोकर, बीज साफ किया जाता है, उसके बाद धूप में सुखाया जाता है। बीज को सुखाकर भंडारित किया जाता है। अगर तेल मशीन द्वारा निकाला जाए तो बीज को कूटा नहीं जाता। पारंपरिक विधि से तेल निकालने के लिए सूखे बीज को कूट कर बारीक पाउडर में परिवर्तित कर लिया जाता है, जिसे धूप में रखा जाता है, फिर लकड़ी की बनी लंबी आयताकार काठी में बारीक पाउडर को गूँदा जाता है और बार–बार निचोड़ कर तेल निकाला जाता है। यह विधि अब लगभग लुप्त हो गयी है। इसका मुख्य कारण आधुनिकीकरण है। अब ग्रामीण लोग बीज को इकट्ठा ही नहीं करते, अगर कहीं एकत्रित करते भी हैं तो तेल को मशीन द्वारा ही निकाला जाता है।

औषधीय उपयोग : पारंपरिक रूप से तेल का उपयोग गठिया, जोड़ों एवं मांसपेशियों के दर्द एवं खिंचाव में किया जाता है। इसकी खल को गरम करने के पश्चात, हल्के गरम लेप को पेट पर लगाने से पेट दर्द में आराम मिलता है। पौधे के बीजों तथा जड़ों में रोगाणुरोधक गुण पाये गए हैं। इसकी हल्की गरम खल का लेप चर्म रोगों में भी उपयोगी होता है। पारंपरिक रूप से पौधे की जड़ों के रस को सांप के जहर को निष्क्रिय करने के लिए उपयोग किया जाता है। कम रक्त शर्करा के उपचार में भी इस पौधे को उपयोगी पाया गया है।

मृदा अपरदन : पौधे की जड़ें गहरी होती हैं, अतः यह मृदा अपरदन को रोकने के लिए भी उपयोगी है। बंज़र भूमि के पुनरूत्पादन में भी इसका पौधरोपण किया जा सकता है।

लाईव फेंसिंग एवं हेज: झाड़ीनुमा पौधा काँटेदार होने के कारण लाईव फेंसिंग के लिए उपयोगी होता है। इसे कृषि तथा फल बाग के चारों ओर लाईव फेंसिंग एवं हेज के लिए भी उगाया जा सकता है।

ईंधन : धार्मिक महत्व होने के कारण इस पौधे की लकड़ी पूजा एवं हवन में जलाई जाती है। इसके अलावा सूखी लकड़ियों को घरों में ईंधन के लिए भी उपयोग किया जाता है। पहले समय में ग्रामीण लोग तेल का उपयोग अंधेरे में रोशनी के लिए करते थे।

धार्मिक : पौधे का धार्मिक महत्व भी है, इसकी पत्तियां एवं टहनियों का उपयोग पूजा मे होता है इसलिए पौधे को शिमला, कुल्लू, मंडी व सिरमौर के ग्रामीण क्षेत्रो में मंदिर के आसपास भी उगने दिया जाता है।

प्राकृतिक रंग : इसके फल–गूदा के नीले रंग को स्थानीय लोग ऊनी वस्त्र को रंगने के लिए भी उपयोग करते थे। यद्यपि अब इसका यह उपयोग प्रचलन में नहीं है। इसके अलावा पुराने समय में गाँव के स्कूली बच्चे फल–गूदा से तैयार स्याही को लकड़ी की तख्ती पर लिखने के लिए भी उपयोग करते थे।

संगीत यन्त्र : भेखल के पौधे का तना अच्छी उपजाऊ मिट्टी में मोटा हो जाता है, जिसे प्राचीन काल में लोग ढ़ोल बनाने में उपयोग करते थे।

निष्कर्ष : भेखल कम प्रयुक्त होने वाला परंतु, महत्वपूर्ण बहुपयोगी पौधा है। सामान्यतः बहुत सारी वनस्पति प्रजातियों को सरंक्षण एवं उसके उपयोग में प्राथमिकता नहीं दी जाती है। भेखल भी इसी श्रेणी का पौधा है। प्रजाति के महत्व को देखते हुए इसका सरंक्षण व आनुवंशिकी सुधार करना आवश्यक है। पौधे से प्राप्त खाद्य तेल की गुणवत्ता पर भी कम ही अध्ययन है। अतः इस दिशा में भी कदम उठाना जरूरी है। इसके तेल को साबुन बनाने तथा हायड्रोकार्बन एवं डीजल के बदले में उपयोग करने की दिशा में भी काम किया जा सकता है। पौधे के पारंपरिक उपयोग एवं लाइव फेंसिंग के उपयोग के बारे में भी जागरूकता लाना आवश्यक है। इससे न केवल पौधे का सरंक्षण होगा बल्कि ग्रामीण लोगों को भी फायदा होगा। हिमाचल प्रदेश वन विभाग को इस प्रजाति के सरंक्षण एवं विकास पर भी ध्यान देने तथा कार्य करने की आवश्यकता है। अधिक उत्पादकता एवं गुणवत्ता वाली भेखल प्रजाति से ग्रामीण आर्थिकी में भी सुधार लाया जा सकता है।

❀ ❀ ❀

सुन्दरता पर सब मरते हैं
किन्तु असुंदर से डरते हैं
जग इन दोनों का उत्तर है
जीवन इस सबके ऊपर है
सबके जीवन में क्रंदन है
लेकिन अपना-अपना मन है

सौ बातों की एक बात है।

– रमानाथ अवस्थी

औषधीय गुणों से भरे - बणा, बसुट्टी और बरे

श्री दुष्यंत कुमार
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

आदिकाल से ही, मनुष्यों के विभिन्न रोगों के निदान के लिए पेड़–पौधों तथा जड़ी–बूटियों का इस्तेमाल व्यापक तौर पर होता रहा है। संरचनात्मक स्तर पर, मानव जगत और पादप जगत की मूल इकाई कोशिकीय होने से तथा आधारभूत तत्वों में एकरूपता के कारण इनमें स्वतः ही मौलिक रूप से समानता विद्यमान है। शायद इसलिए हमारे ऋषियों, मुनियों ने शरीर की क्रिया–प्रणाली में विविध कारणों से उत्पन्न विकारों व व्याधियों के निवारण के लिए आस–पास के पारिस्थितिकीय वातावरण में उपाय या समाधान ढूढ़ने का प्रयास किया तथा कालान्तर में यही विधा – एक सम्पूर्ण विज्ञान अर्थात आयुर्वेद के रूप में विकसित हो गई। भारतीय चिकित्सा प्रणाली में आयुर्वेद का विशेष महत्व है तथा यह हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। संस्कृत भाषा की ये पक्तियां मनुष्यों के लिए पौधों की उपयोगिता को भली–भांति चरितार्थ करती हैं।

अमन्त्रम् अक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः।।

अर्थात इस धरा पर कोई मनुष्य अक्षम नहीं और न ही ऐसा कोई पौधा है जिसका औषधीय उपयोग न हो। परन्तु सुगमता से उपलब्ध साधनों का सही प्रबन्धन करने वाला व्यक्ति मुश्किल से मिलता है।

वास्तव में, आयुर्वेद का उदगम् स्थल हिमालयी क्षेत्र है तथा इसी क्षेत्र में स्थित हिमाचल प्रदेश दुर्लभ औषधीय सम्पदा का एक वृहद् भण्डार है। यहां पर पाए जाने वाले बहुत से औषधीय पौधों के समूह में से तीन सामान्य से प्रतीत होने वाले पौधे – बणा *(Vitex negundo)*, बसुट्टी *(Adhatoda vesica)* तथा बरे *(Acorus calamus)* कई प्रकार के औषधीय गुणों से परिपूर्ण हैं।

बणा *(Vitex negundo)*

यह बरबीनेसी (Verbenaceae) वानस्पतिक परिवार का एक साधारण सा झाड़ीनुमा पौधा है जो निरगुंडी के नाम से भी जाना जाता है। यह प्रदेश के शिमला, सोलन, सिरमौर, बिलासपुर, हमीरपुर, कांगड़ा इत्यादि जिलों मे लगभग 1500 मी. की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में आसानी से मिल जाता है। इसके पत्ते ऊपर से चिकने तथा नीचे से हल्के सफेद रंग के होते हैं। इसमें 6 मि.मी. तक लम्बे फूल पुष्प गुच्छ के रूप व्यवस्थित होते हैं। यह सम्पूर्ण पौधा ही औषधीय महत्व का होता है। इसमें पीड़ानाशक, वातनिरोधक, आर्तवजनक (Emmenagogue), कफ निस्सारक, ज्वर नाशक जैसे अभिलक्षण पाये जाते हैं। इसका उपयोग दमा, फेफड़े के रोगों, मूल तन्त्र के विकारों, गठिया तथा काटिस्नायुशूल (Sciatica) के लिए किया जाता है। निरगुण्ड़ीकल्प, निरगुण्ड़ीतेज जैसे चिकित्सीय फार्मूले (Formulations) तैयार करने में इसका प्रयोग किया जाता है।

बणा *(Vitex negundo)*

बसुट्टी *(Adhatoda vasica)*

यह एकेनथेसी (Acanthaceae) वानस्पतिक परिवार का एक पौधा है जो सड़कों के किनारे तथा बेकार पड़ी भूमि पर प्रायः बहुतायत में पाया जाता है। इसका आकार झाड़ीनुमा तथा पत्ते अण्डाकार, प्रखर चमकदार होते हैं। इसमें सफेद रंग के पुष्प लगते हैं। इस पौधे के पत्तों, जड़ों, फूलों तथा छाल (Bark) का औषधीय इस्तेमाल किया जाता है। इसका प्रयोग रक्त स्राव रोकने, कफ निवारण, मधुमेह, सन्धि दर्द, तथा मूत्र – विकारों के लिए किया जाता है। हि.प्र. में इसका प्रसार शिमला, सोलन, बिलासपुर, हमीरपुर, कांगड़ा आदि जिलों में अधिक है।

बसुट्टी *(Adhatoda vasica)*

बरे *(Acorous calamus)*

ऐरेसी (Arecae) वानस्पतिक परिवार से सम्बंधित यह पौधा प्रदेश के कुल्लू, मण्डी, शिमला, कांगड़ा, सिरमौर, चम्बा जिलों में नदी नालों के किनारे तथा पानी के स्रोतों के नजदीक नम और दलदल वाली जगहों पर पाया जाता है। इसे बच के नाम से भी जाना जाता है। वास्तव में यह एक बहुवर्षीय पौधा होता है जिसकी प्रकन्द कई शाखाओं में विभाजित होती है। प्रकन्द (Rhizome) के ऊपर पत्ते झुण्ड के रूप में व्यवस्थित होते हैं। प्रकन्द को काटकर तथा सुखाकर औषधीय उपयोग के लिए इस्तेमाल किया जाता हैं। प्रकन्द से तैयार चूर्ण में वायुनाशी, अग्निवर्धक गुण पाए जाते हैं। इसका इस्तेमाल श्वसनशोधी, ज्वरनाशक, उदरशूल तथा अपच इत्यादि के उपचार में किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह एलर्जी विरोधी तथा जुखाम में इस्तेमाल होता है। वच – चूर्ण, सरस्वताचूर्ण, संजीवनीवटी तथा चन्द्रप्रभावटी के निर्माण में वच या बरे का प्रयोग होता है।

बरे *(Acorous calamus)*

प्रदेश के कई क्षेत्रों में आसानी से तथा बहुतायत में पाये जाने वाले इन पौधों का पारम्परिक चिकित्सा प्रणाली में उपयोग किया जाता रहा है। विविध औषधीय गुणो वाले इन पौधों की लोक वानस्पतिक महत्ता को उजागर करने के लिए, लोकभाषा की ये पंक्तियां बहुत प्रचलित हैं।

जिथी हौण बणा, बसुटी ते बरे।
तीथी माणू क्यिां मरे।।

अर्थात जहाँ पर, बणा, बसुट्टी और बरे उपलब्ध हैं तथा इनका सही इस्तेमाल करने वाला जानकर मौजूद है, वहां मनुष्य की मृत्यु नही हो सकती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि आधुनिक चिकित्सा जगत ने कई क्रान्तिकारी उपलब्धियां हासिल की हैं तथा ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्वति दिनो – दिन प्रगति करती जा रही है, परन्तु यह भी सत्य है कि कहीं न कहीं मानव–शरीर पर अंग्रेजी दवाईयों के प्रयोग का दुष्प्रभाव भी पड़ता है। इसलिए लोगों का पारम्पारिक औषधीय पद्धति की ओर रूझान बढ़ना स्वाभाविक है। वर्तमान समय में प्रकृति के खजाने मे पाई जाने वाली पौध सम्पदा तथा जड़ी बूटियों की सही पहचान, उचित दोहन तथा प्रबन्धन व संरक्षण की व्यवस्था करना अति आवश्यक है ताकि आने वाली पीढ़ियों तथा मानव–मात्र के कल्याण के लिए इनकी निरन्तरता बनी रहे।

वानिकी तकनीकी एवं विस्तार : काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान में स्थिति

श्री पंकज के. अग्रवाल
काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू

भारत में वानिकी अनुसंधान

भारत में वानिकी अनुसंधान का विकास 1864 में फॉरेस्ट सर्विस की स्थापना के पश्चात वन प्रबंधन से जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक चरणों में वन प्रबंधन अभ्यास पौराणिक वन रक्षकों द्वारा वानिकी अभ्यास के समुचित विकास पर आधारित वैज्ञानिक जिज्ञासा के कारण धीरे–धीरे मजबूत हुआ। अनुभव के आधार पर अन्वेषण के द्वारा तकनीकी का सतत् विकास हुआ। इंडियन फॉरेस्टर नामक पत्रिका दुनिया के वानिकी जगत की सबसे पुरानी पत्रिका है जिसमें सन् 1875 में ही अनुसंधान परिणामों पर उपयोगी लेख छपने प्रारंभ हो गए तथा इस क्षेत्र में यह पत्रिका अनुसंधान परिणामों एवं अनुभवों के अनुप्रयोग की प्रथम औपचारिक वाहक बन गई। सन् 1906 में इंपीरियल फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट (आई.एफ.आर.आई.) की स्थापना देहरादून में की गई जिसे कालान्तर में फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट एंड कॉलेज (एफ.आर.आई.एंड सी.) के नाम से जाना गया जो देश का प्रथम वानिकी अनुसंधान संस्थान बना। सन् 1929 के बाद आईएफआरआई ने सतत् विकास के साथ वानिकी अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों में विशेष पहचान बनाई। संस्थान ने वानिकी अनुसंधान की गतिविधियों में वर्षों से योजना बनाने, निर्देशन, आयोजन तथा नेतृत्व में सफल भूमिका निभाई है।

वानिकी अनुसंधान का पुनरआयोजन

स्वतंत्र भारत में महत्त्वपूर्ण वन उत्पादों की माँग एवं आपूर्ति में काफी असंतुलन देखने को मिला तथा कुल विद्यमान वन क्षेत्र में काफी गिरावट देखने को मिली। इस बदलती परिस्थिति ने नए अनुसंधान को प्राथमिकता दी जिसमें संरक्षण एवं पारितंत्र का विकास, देश में ऊर्जा एवं अन्य काष्ठ आवश्यकताओं की उत्पादकता वृद्धि, कृषि–वानिकी अध्ययन, बंजर भूमि का पुनरुत्थान, पौधशाला संरक्षण, प्राकृतिक वन की रोपाई, कटाई पश्चात प्रक्रिया में सुधार तथा बेहतर शिक्षा एवं प्रशिक्षण के माध्यम से मानव संसाधन का विकास किया जा सकता है।

वानिकी अनुसंधान, शिक्षा एवं प्रशिक्षण के उद्देश्य से सन् 1986 में भारत सरकार द्वारा वानिकी अनुसंधान को मान्यता प्रदान करते हुए भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद की स्थापना की गई तथा विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं के मद्देनजर देश के भिन्न–भिन्न भागों में अनुसंधान संस्थान भी खोले गए। परिषद को देश में वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा में संस्थान, विश्वविद्यालय, राज्य वन विभाग एवं वन आधारित उद्योग में सामंजस्य के साथ योजनाएं समन्वय, अनुसंधान तथा पर्यवेक्षण आदि का आदेश दिया गया। भा.वा.अ.शि.प. तथा इसके संस्थानों को उद्देश्य प्राप्ति हेतु पर्याप्त श्रम शक्ति, अवसंरचना, निधि एवं प्रयोजनमूलक प्राधिकार के मद्देनज़र सन् 1991 में भा.वा.अ.शि.प. को भारत सरकार द्वारा स्वायत्तता प्रदान की गई।

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू, को राष्ट्रीय स्तर पर काष्ठ विज्ञान में अनुसंधान करने तथा कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश एवं गोवा की वानिकी अनुसंधान आवश्यकताओं हेतु अधिकृत किया गया।

भारत में वानिकी विस्तार का महत्त्व

विस्तार का उद्देश्य ग्रामीण समुदायों में अद्यतन जानकारियाँ, तकनीकी तथा अन्य लाभ पहुँचाना है। विस्तार ग्रामीण विकास का वाहक है जो सूचना प्रसार,

तकनीकी हस्तांतरण (प्रयोगशाला को खेतों से जोड़ना), अनुसंधान परिणामों को कार्यान्वयन के लायक बनाना, निविष्टियों का वितरण (बीज, पौधा, उर्वरक), विपणन एवं मूल्य से संबद्ध सूचना के परामर्श का प्रावधान आदि विषयों का अध्ययन करता है। राष्ट्रीय वानिकी विस्तार कार्यक्रम में सामान्यतया वन संरक्षण, मिट्टी एवं जल संरक्षण, कृषि वानिकी, कृषि कार्यों के हस्तांतरण का आनुपातिक संवितरण, हरित क्रांति एवं वानिकी सूचना आदि क्षेत्र आते हैं। विस्तार का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य पौधा रोपण को प्रोत्साहित करना है जिसमें किसानों से सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं तथा उपयुक्त वृक्षों की रोपाई पर सूचनाएँ सार्वजनिक की जाती हैं।

तकनीकी हस्तांतरण के साथ–साथ संप्रेषण एवं विरोध शमन विस्तार के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। मीडिया जालक्रम की भागीदारी, प्रदर्शनी, प्रतियोगिताएँ एवं अन्य संवर्धन गतिविधियों के द्वारा विस्तार को और प्रभावी बनाया जा सकता है।

❀ ❀ ❀

करूँ क्या?

सुर सब बेसुरे हुए करूँ क्या?
उतरे हुए सभी के मुखड़े
सबके पाँव लक्ष्य से उखड़े
उखड़ी हुई भ्रष्ट पीढ़ी से
विजय-वरण के लिए कहूँ क्या?
सागर निकले ताल सरीखे अन्धों को कब आँसू दीखे
अन्धों की महफ़िल में आँसू
जैसी उजली मौत मरूँ क्या?
झूठी सत्ता की मरीचिका
आत्म भ्रष्ट कर रही जीविका
बौनों की बस्ती में बोलो
ऊँचे क़द की बात करूँ क्या?

सौ बातों की एक बात है।

– रमानाथ अवस्थी

कृषिवानिकी में पॉपलर की नर्सरी एवं वृक्षारोपण तकनीक

श्री रामबीर सिंह, वैज्ञानिक–'डी'
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

भारत में प्राकृतिक रूप से स्थानीय पॉपलर की कई प्रजातियाँ पाई जाती हैं परन्तु *पॉपुलस डेल्टाएडिस* अथवा पॉपलर *(Populus deltoids or Poplar)* का अर्थव्यवस्था में सबसे विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। पॉपलर का वृक्ष तेज वृद्धि के कारण उत्तर भारतीय कृषि भू–दृश्य में बहुत लोकप्रिय है। इसका तना सीधा एवं ऊँचा तथा मुख्य शाखाएं एकल एवं काफी दूर तक फैली होती हैं। 3 से 4 माह के अंतराल में नवम्बर से फरवरी के बीच इस वृक्ष में पतक्षड़ होता है तथा सामान्यतः मार्च में पत्ते निकलते हैं। यह 6 से 8 वर्षो के अल्प चक्र में कृषि भूमि में उच्च उत्पादन (20 से 25 घनमीटर/हे0/वर्ष) तक दे सकता है।

भूमि और जलवायु :

साधारणतया पॉपलर प्रजातियां उपजाऊ, दोमट या हल्की रेतीली मिट्टी जिसमे कार्बनिक मात्रा अधिक हो, के साथ अच्छे परिणाम देती हैं। लवणीय एवं क्षारीय मृदा पॉपलर के लिए उपयुक्त नहीं है। वाटर लौगिंग (जल जमाव) वाले क्षेत्रों के लिए पॉपलर बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है। पॉपलर को केवल अच्छी सिंचित भूमि में ही लगाना चाहिए।

1. पौधशाला (नर्सरी)

अ) कटिंग लगाने से पहले की तैयारी

मिट्टी : नर्सरी ऐसी जगह लगाएं जहां मिट्टी रेतीली दोमट किस्म की हो। भारी मिट्टी वाले खेत में रेत डालकर क्यारी बनाई जाए ताकि मिट्टी दोमट की भांति बन जाए।

क्यारियां तथा सिंचाई की नालियां: रोपण के लिए 5 से 10 मी. लम्बी तथा 3 मी0 या इससे कम चौड़ी क्यारियाँ बनाई जा सकती हैं। क्यारियाँ बहुत बड़ी हैं तो सिंचाई करने में कठिनाई होती है। एक क्यारी के अन्दर भूमि पूरी तरह समतल होनी चाहिए ताकि पानी बराबर फैल सके।

खाद का मिश्रण : गोबर की खाद मिट्टी को उपजाऊ बनाने तथा नमी की उचित उपलब्धता को बनाने के लिए आवश्यक है। एक एकड़ नर्सरी में 2500 क्यूबिक फीट सड़ी हुई गोबर की खाद, 50 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट, 25 कि.ग्रा. यूरिया, 15 कि.ग्रा. पोटाश, 10 कि. ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 10 कि.ग्रा. फोरेट मिलाकर डालें। जिन खेतों में मिट्टी उपजाऊ हो उनमें खाद की मात्रा आधी तक की जा सकती है।

कलमों की तैयारी : धारदार औजार से कलमों (22 से.मी. लम्बाई व 1 से 3 से.मी.व्यास) को काटकर 24 से 48 घण्टे साफ पानी में डुबो देना चाहिए। लगाने से पूर्व कलमों को दो से तीन घण्टे तक बेवीस्टिन के घोल में (2 ग्राम बेवीस्टिन प्रति लीटर पानी में) डुबा देना चाहिए।

नर्सरी में कटिंग लगाने का समय : कटिंग लगाने का सही समय 1 जनवरी से 15 फरवरी के बीच है।

कटिंग लगाने की विधि : कलमों के बीच का अन्तराल 60 से.मी. x 60 से.मी. (50–60 से.मी. तथा लाइन के बीच की दूरी 60–80 से.मी.) रखें। कटिंग लगाते समय इतनी गहरी लगाएं कि सिंचाई के बाद मिट्टी बैठने पर केवल एक कली ही मिट्टी से ऊपर दिखाई दे। कटिंग लगाने के बाद उसी दिन सिंचाई करना अत्यंत आवश्यक है।

ब) कटिंग लगाने के पश्चात देख रेख

सिंचाई : कटिंग लगाने से बरसात के शुरू होने तक प्रत्येक सप्ताह में एक बार अवश्य सिंचाई करें। सिंचाई

फ्लड विधि से करना आवश्यक है। बरसात के बाद 15 अक्टूबर तक एक सप्ताह में एक बार तथा उसके पश्चात् नवम्बर तक दो सप्ताह में एक बार पानी दें।

अतिरिक्त कलियां व शाखाएं हटाना (Singling / सिंग्लिंग) : कटिंग लगाने के एक महीने के अन्दर ही प्रत्येक कटिंग पर एक ही शाखा रहने दें। सबसे मजबूत शाखा को रखते हुए अन्य शाखाओं को कटिंग के साथ सटाकर धारदार औजार से काट देना चाहिए।

निराई व खरपतवार नियंत्रण : पहली निराई व खरपतवार निकालने का कार्य कटिंग लगाने के 20–25 दिन के अन्दर करना आवश्यक हो जाता है। निराई व खरपतवार नियंत्रण के लिए मिट्टी लगभग 4"–5" गहराई से कुदाली या फावड़े द्वारा काट कर पलट देनी चाहिए। एक वर्ष में 5–7 बार निराई व खरपतवार नियंत्रण कार्य करने पड़ते हैं।

खाद : कटिंग लगाने के एक माह बाद हर पौधे के इर्द–गिर्द मिट्टी में दो ग्राम प्रति पौधे की दर से यूरिया खाद मिला दें। यह काम सिचांई के एक दिन बाद करना चाहिए। एक महीने के बाद यूरिया दोबारा डाल दें। यदि पौधे जून के अन्त तक 1.5 मी0 ऊँचाई के नहीं होते है तो बरसात में दो बार यूरिया अवश्य डाल दें, दोनो के बीच 30–45 दिन का अन्तर रहे।

शाखातराशी (Pruning / प्रूनिंग) : पॉपलर पौधे के तने की ऐसी शाखाएं जो 15 से.मी. से अधिक लम्बी हो गई हों, तेज ब्लेड से तने के साथ सटाकर काट देनी चाहिए। यह कार्य हर 30–45 दिन में करते रहना चाहिए। जुलाई के अन्त में एक मीटर ऊँचाई पर पॉपलर के पौधे को पकड़ कर हाथ को नीचे लाते हुए पत्ते हटा देने चाहिए।

नर्सरी में तैयार पौधे को उखाड़ना : वर्ष के अन्त तक पौधे 3 से 5 मीटर तक ऊँचे हो जाते हैं। एक वर्ष के नर्सरी के पौधे को ई.टी.पी. (एण्टायर ट्रान्सप्लांट या सम्पूर्ण प्रतिरोपण) कहते हैं। नर्सरी में उगे पौधे को फावड़े से सतह से 25 से मी. गहरा उखाड़ दें तथा वृक्षारोपण के लिए तुरन्त भेज दें।

रोपण स्टॉक: नर्सरी में तैयार किए गए एक साल के पौधे (ई.टी.पी.) जो 3 मीटर से 5 मीटर ऊँचे हों। बहुत ऊँचे पौधों के सूखने की आशंका अधिक रहती है।

ई.टी.पी. (पौधों) की तैयारी : पौधे लगाने से पहले उनकी शाखाएं हटा दी जानी चाहिए। शाखाएं तने के साथ सटाकर तेजधार वाले औजार से हटानी चाहिए। यदि किसी पौधे में एक से अधिक लीडर हों तो अतिरिक्त शाखा को भी अवश्य ही हटा देना चाहिए। लगाने से पहले पौधे को 48 घंटे तक पानी में अवश्य ही खड़ा करके रखा जाये।

ई.टी.पी. का रखरखाव : ई.टी.पी. (एक साल का नर्सरी का पौधा) उखाड़ने के बाद 10 दिन से अधिक स्टोर करके नहीं रखना चाहिए। ई.टी.पी. को छायादार जगह में साफ पानी में इस प्रकार खड़ा किया जाए कि हर पौधे की जड़ें पूरी तरह पानी में डूबी रहें। 100 लीटर पानी में 50 मि.ली. एन्डोसल्फान तथा 200 ग्राम बैवीस्टिन डालने से कीड़े तथा फफूंदी से पौधे बचे रहेंगे।

2. (वृक्षारोपण) प्लान्टेशन

भूमि : रेतीली दोमट तथा दोमट मिट्टी पॉपलर के लिए सबसे अच्छी है। भूमि ऐसी नहीं हो जिसमें पानी रूकता हो। जिन क्षेत्रों में गर्मी के मौसम में पर्याप्त सिचाई देना संभव न हो तो पॉपलर नहीं लगाना चाहिए। पॉपलर को ऊपर से खुले आकाश तथा पूरी धूप की आवश्यकता होती है। किसी अन्य वृक्ष की टहनियों के नीचे पॉपलर को कदापि नहीं लगाएं।

वृक्षारोपण का समय: सही समय पर पौधे लगाना पौधे की सफलता के लिए बहुत आवश्यक है। सही समय जनवरी से मध्य फरवरी है। इसके बाद वृक्षारोपण में सफलता की संभावना कम हो जाएगी।

रोपण की दूरी: ब्लाक प्लांटेशन के लिए : 4मी. x 4मी. से 5मी. x 4मी., खेतो के किनारे पंक्ति रोपण के लिए : 3 मीटर के फासले पर

खाद व रोपण की विधि : प्रत्येक गड्ढे के लिए 2 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 50 ग्रा. सिंगल फास्फेट, 25 ग्रा. पोटाश खाद तथा 5 ग्रा. फोरेट को गड्ढे से निकाली

गई मिट्टी में मिलाएं। गड्ढे में पौधा खड़ा करके यह मिश्रण गड्ढे में भर दें तथा हल्के पांव से मिश्रण को दबा दें ताकि पौधा हवा में सीधा रहे। रोपण के तुरंत बाद सिंचाई कर दें।

वृक्षारोपण के बाद देखभाल

सिंचाई : पॉपलर के वृक्ष को पहले वर्ष में बसंत या गर्मी के मौसम में एक सप्ताह में एक बार तथा बरसात के बाद से पत्ते झड़ने तक 15 दिन में एक बार अवश्य सीचें। दूसरे वर्ष से 6 वर्ष की आयु तक बसंत व गर्मी के मौसम में 15 दिन में तथा बरसात के बाद 1 महीने में सिंचाई करें। साधारणतया अधिक सिंचाई से पौधे तेजी से बढ़ते है बशर्ते पानी जडों के पास खड़ा न रहता हो। फ्लड (Flood) विधि से सिंचाई सर्वोत्तम है। इसलिए पॉपलर के पौधों के साथ यदि सिंचाई की नाली बना दी जाए तो सिंचाई करना बहुत आसान रहता है। यदि इस तरह सिंचाई न भी की जा सके तो बाल्टी द्वारा एक बारी में प्रत्येक पौधे को 40 ली0 पानी दें।

खाद : पॉपलर की प्लांटेशन में लगी फसल को दी गई खाद पॉपलर को भी मिल जाती है। फिर भी प्रत्येक वृक्ष के इर्द–गिर्द लगभग 2–3 कि.ग्रा. गोबर की खाद हर वर्ष 2–3 बार मिलाएं जिससे वृद्धि अधिक हो। खाद डालने के बाद सिंचाई करें।

पेड़ के इर्द गिर्द मिट्टी चढ़ाना : हवा या बरसात से पौधे के तिरछा होने की दशा में उसे सीधा कर दें। पेड़ो के इर्द– गिर्द वर्षा ऋतु में लगभग 15 से.मी. ऊंची मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए जिससे पौधों के गिरने या तिरछे होने की संभावना कम रहे।

शाखातराशी (Pruning) : पौधे की प्रूनिंग दिसम्बर से जनवरी में करें। दो और तीन साल के अन्त में निचले एक तिहाई भाग से तथा उससे बड़े पौधे में आधी ऊँचाई तक आरी के साथ टहनियां हटा दे। टहनियां तने के साथ सटाकर हटाएं। यदि पौधे के शीर्ष पर कोई अन्य शाखा का मुकाबला कर रही है तो ऐसी अन्य शाखा को हटा दें।

कृषिवानिकी में पॉपलर का प्रभाव : पॉपलर के रोपण में धान के अतिरिक्त सभी फसले उगाई जा सकती है। पॉपलर की छाया का कुछ प्रभाव फसल पर पड़ता हैं जिससे फसल की उपज कम हो जाती है परन्तु फसल तथा पॉपलर वृक्ष को मिला दें तो प्रति हैक्टेयर लाभ अधिक मिलता है। खरीफ की फसल पर छाया का प्रभाव अधिक पड़ता है क्योंकि उस समय पॉपलर के वृक्ष पर पत्ते होते हैं। हल्दी, अदरक आदि की खेती पॉपलर की छाया में आसानी से की जा सकती है। छोटे पेड़ कम छाया करते हैं इसलिए दो वर्ष की आयु तक गन्ना आसानी से होता है। रबी की फसलें पॉपलर पेड़ की कटाई तक हर वर्ष आसानी से लगाई जा सकती है।

पॉपलर का वृक्षारोपण

कीट तथा बीमारियों से बचावः कीट तथा रोग से सम्बंधित विशेषज्ञों की राय का पालन अवश्य करें ताकि ऐसी समस्याओं से बचाव हो सके।

पॉपलर क्लोनः

जी 48, एस 7, सी 8, एल 30–82 एल 30–84, डी– 66, डी–75 एस.टी. 66, सी20, सी 15 एल सिरीज, डब्ल्यू एस एल सिरीज, आदि पॉपलर के क्लोन हैं। इन सभी क्लोनों को प्रयोग में लिया जा रहा है। जिसमें से जी 48, की अधिक मांग है।

पॉपलर का वृक्ष तेज वृद्धि के कारण उत्तर भारतीय कृषिवानिकी में बहुत लोकप्रिय है। इस तरह पॉपलर को कृषिवानिकी में प्रयोग कर किसान भाई अधिक से अधिक लाभ ले सकते हैं।

❁❁❁

साल के बीज और पौध का प्रमुख छिद्रक – पामेन थेरिसिस मेरिक (लेपिडोप्टेरा टॉर्ट्रिसिडी)

डॉ. के.पी. सिंह एवं सुश्री मनीषा शर्मा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

परिचय : शोरिया रोबस्टा गौर्य, जिसे साधारण भाषा में 'साल' कहा जाता है, भारतीय उपमहाद्वीप में मूल रूप से पाया जाता है। साल शब्द संस्कृत से आया है जिसका अर्थ होता है 'मकान' अर्थात् यह मकान बनाने में काम आने वाला टिम्बर है, इसीलिए यह इस क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण टिम्बर प्रजाति है। भारत में साल के वन मैदानी क्षेत्रों में 10 मिलियन हैक्टेयर में फैले हुए हैं। हिमालय की तलहटी, उत्तर में उत्तराखण्ड, दक्षिण में आंध्र प्रदेश और पूरब में त्रिपुरा की निचली घाटियों तथा हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, झारखंड, सिक्किम, असम और मेघालय में इसके वन फैले हुए हैं।

महत्व :

टिम्बर – यह मजबूत, लचीला और भारी हार्डवुड है जो काफी टिकाऊ होता है और इसमें कीड़ों के आक्रमण के प्रति उच्च प्रतिरोधक क्षमता होती है। इसका उपयोग भवन निर्माण, हाइड्रॉलिक इंजीनियरिंग, पोत और रेलवे स्लीपर में किया जाता है। इसके साथ ही इसका उपयोग पोल, रेलवे टाइज़ और पोस्ट्स, खिड़की के फ्रेम, फर्श में तथा कई अन्य प्रयोजनों में किया जाता है।

पत्तियाँ – पत्तियों का उपयोग चारे के रूप में और अस्थायी थालियों और प्यालों के निर्माण में व्यापक तौर पर किया जाता है, जो पर्यावरण अनुकूल होते हैं। इसके अलावा, पत्तियों में उपस्थित फ्लेवोनॉयड्स का प्रयोग कीमो–टैक्सोनोमिक मार्कर्स के रूप में और कई दवाइयों के सक्रिय अवयवों के रूप में किया जाता है।

बीज – साल के बीजों से प्राप्त रिफाइंड तेल का उपयोग खाना पकाने, साबुन बनाने में और चॉकलेट उत्पादन उद्योगों में, तथा कोकोआ बटर के प्रतिस्थानिक के रूप में किया जाता है। बीज का उपयोग वनस्पति, पेंट्स, पिगमेंट्स, ल्यूब्रिकेन्ट्स, बायोगैस और बायोडीजल के उत्पादन में भी किया जाता है।

रेजिन (राल) : रेजिन पुराने दर्द जैसी बीमारियों के इलाज के लिए हर्बल दवाईयों का महत्वपूर्ण एवं आशाजनक स्रोत है। इसमें सूजननाशक, ज्वरनाशक गुण हैं और मोनोरेजिया, ल्यूकोरिया, प्लीहा परिवर्धन, आँखों में जलन, बर्न्स और स्काल्ड्स के इलाज में इसके उपयोग का वृहत उल्लेख पारंपरिक सिद्ध साहित्य में किया गया है। 'साल' के राल का उपयोग एस्ट्रिन्जेन्ट और डिटर्जेंट के रूप में किया जाता है और इसे शहद अथवा चीनी में मिलाकर इसका प्रयोग डिसेन्ट्री और खूनी बवासीर के इलाज में किया जाता है।

ओलियोरोसिन (गोंद) : सल्फर के साथ मिलाकर इसका प्रयोग घाव पर मलहम के रूप में और प्लास्टर के वैक्स के रूप में किया जाता है। आदिवासी लोग पेड़ की छाल के पाउडर और लेप का प्रयोग, कहीं कट जाने पर खून के बहाव को रोकने और घाव को भरने के लिए करते हैं। चूर्ण का उपयोग हिन्दू अनुष्ठानों में 'धूप' (इन्सेंस) के रूप में भी किया जाता है (जोशी, 2011)।

कीड़ों की समस्या : बढ़ती हुई जनसंख्या के अत्यधिक दबाव के अलावा, इसे कीड़े नुकसान पहुँचाते हैं जो घटते हुए साल के वनों के प्रमुख कारण हैं। साल को बीज से लेकर अंतिम तैयार उत्पाद तक अलग–अलग मात्रा में क्षति पहुंचती है और इस पर 56 परिवार के अंतर्गत 340 कीट प्रजातियों और 8 प्रकारों द्वारा आक्रमण होता है (माथुर एंड सिंह, 1961)। पेड़ के

जननांगों अर्थात् पुष्प, इनफ्लोरेसेस आदि को क्षति पहुँचाने वाले और पेड़ पर तथा भंडारण के दौरान बीज को क्षति पहुँचाने वाले कीड़ों को बीज कीड़ा कहते हैं। सीड इंसेक्ट्स की कुल प्रजातियों में से कीड़ों की 16 ऐसी प्रजातियां हैं जो बीज पर पलती हैं, 11 प्रजातियां पेड़ पर लगे बीज पर पलती हैं और 5 प्रजातियां ऐसी हैं जो भंडारण के दौरान अथवा जमीन पर गिरे बीज पर हमला करती हैं।

पेमिने थेरिस्टस मेरिक (लेपिडोप्टेराःटोट्रिसिडी) साल के बीज और पौधों का सबसे महत्वपूर्ण कीट के रूप में उभरकर आया है। यह छिद्रक साल बीज के कोटीलेडन और भ्रूण को खाकर पूरी तरह खोखला बना देता है, पीछे लार्वा मल छोड़ जाता है जो प्रवेश बिन्दु से बाहर निकला हुआ दिखता है। एक लार्वा केवल एक बीज को खाता है लेकिन कुछ मामलों में यह अन्य बीज पर भी चला जाता है। पौधे के मामले में एक लार्वा एक पौधे को अपना भोजन बनाता है और जब यह वयस्क बन जाता है तो अन्य ताजे पौधों पर अंडे देता है।

जैविकी :

अंडा – ताजे अंडे आकार में छोटे, गोल और चपटे होते हैं तथा क्रीम रंग के होते हैं। जैसे–जैसे अंडा परिपक्व होता है, अंडे का रंग गंदले क्रीम से लाल भूरा हो जाता है। अंडे की लम्बाई 0. 69±0.17 मिमी और चौड़ाई 0.52±0.23 मिमी होती है। इसकी उद्भवन अवधि 2–3 दिन होती है।

अण्डा

लार्वा – पी. थेरिस्टिस में पांच लार्वा चरण होते हैं। अपने प्रारंभिक चरण में लार्वा क्रीम रंग के होते हैं लेकिन पूर्ण विकसित अवस्था (परिपक्व लार्वा अवस्था) तक क्रमिक विकास के दौरान इनका रंग बदलकर लाल गुलाबी हो जाता है। पहली लार्वा स्थिति में शरीर गंदले क्रीम रंग का और सिर भूरे रंग का होता है। दूसरी अवस्था में शरीर का रंग हल्का भूरा और सिर का रंग बदलकर हल्का भूरा हो जाता है। पृष्ठांत भाग में एक काला धब्बा देखा जा सकता है। तीसरी अवस्था में शरीर का रंग हल्का गुलाबी से गुलाबी और सिर का रंग हल्का भूरा और सफेद दाने की रेखाओं के साथ धब्बेदार होता है। चौथी अवस्था में, लार्वा का रंग तीसरी अवस्था जैसा ही पाया गया अर्थात् दूसरे और आठवें उदर खण्डों को छोड़कर गहरा गुलाबी होता है जो काफी स्पष्ट होता है। अंतिम लार्वा अवस्था में, शरीर का आधार रंग बदलकर लाल गुलाबी हो जाता है और काली रेखाएं एवं गड्ढे होते हैं। लार्वा की लम्बाई और चौड़ाई पहली से पांचवीं अवस्था तक क्रमशः 1.3 से 11 मिमी. और 0.16 से 1.6 मिमी. तक परिवर्तनशील होती है। पूर्ण विकसित आकार प्राप्त करने के बाद परिपक्व लार्वा प्यूपीकरण से कुछ घण्टे पहले खाना बंद कर देता है। दो से तीन दिनों के बाद लार्वा, पूर्व प्यूपा और अंत में प्यूपा में रूपांतरित हो जाता है।

लार्वा

प्यूपा – प्यूपीकरण रेशम के सघन धागों से बुने हुए कोकून के अंदर होता है और सामान्यतया मल की उलझी हुई गोलियों से घिरा होता है और आन्तरिक किनारा चिकना होता है। प्यूपा की लम्बाई 6. 17± 0.12 मिमी. और

प्यूपा

चौड़ाई 1.76±0.08 मिमी होती है। नवोत्पन्न प्यूपा का रंग हल्का भूरा होता है जो बाद में बदलकर लाल गहरा भूरा हो जाता है। प्यूपा 3–4 दिनों के बाद वयस्क बन जाता है।

वयस्क – वयस्क में यौन द्विरूपता पाई जाती है जिसमें नर के शरीर की लंबाई 6.55±0.11 मिमी. और मादा के शरीर की लम्बाई 7.06±0.074मिमी. होती है। मोथ निशाचर होता है और दिन में निष्क्रिय रहता है, बीज पर बैठा रहता है अथवा पौधे के मामले में पत्तों के नीचे छिपा हुआ देखा जा सकता है। उन्हें कांच की चिमनी की दीवारों पर आराम करते हुए देखा जा सकता है और छेड़े जाने पर ही अपनी जगह से हिलता है। मोथ रात को और बहुत सवेरे जब ये मैथुन भी करते हैं, सक्रिय होते हैं। नर का शरीर मादा से छोटा होता है। मादा की आयु नर से ज्यादा होती है।

वयस्क

यह कीट अक्टूबर के अंत से मार्च के अंत तक पौधा में प्यूपा अवस्था में शीतनिद्रा में रहता है। वयस्क सर्वाधिक विपुल मात्रा में जून से अगस्त तक होते हैं जब साल के बीज परिपक्व होकर जंगल में जमीन पर गिरते हैं और पौधा बनते हैं। प्रारंभिक संक्रमण शीत निद्रा से निकलने के बाद डिंब स्थिति द्वारा सर्दियों में उगने वाले पौधों में होता है। अधिकतम संक्रमण बीज के पूर्ण रूप से विकसित होने और जमीन पर गिरने के बाद होता है। जुलाई के अंत में जंगल के फर्श पर अधिकांश संख्या में बीज छिद्रक से संक्रमित हो जाते हैं और पौधे में संक्रमण अगस्त तक पहुँचता है। डिंब स्थिति अक्तूबर तक जारी रहती है। जीवन–चक्र (अंड से वयस्क तक) की लम्बाई ऋतु के अनुसार परिवर्तनशील रहती है और मानसून ऋतु (जून–अगस्त) में अल्पतम होती है। बीज के आंतरिक कॉटीलेडन को गंभीर क्षति पहुँचता है जिसे लार्वा खाकर पूरी तरह खोखला कर देता है। सामान्यतः एक बीज से एक वयस्क निकलता है लेकिन अधिक आबादी के कारण रिपोर्ट मिली है कि यह जंगल के फर्श पर 95% तक साल बीज का विनाश करता है और साल में पौधों के 80% तक को क्षतिग्रस्त करता है। क्षति पहुँचाने की उच्च आंतरिक क्षमता के कारण यह छिद्रक प्रत्येक वर्ष के दौरान क्षेत्र में भारी आर्थिक नुकसान पहुँचाता है।

क्षति का स्वरूप :

पिछली पीढ़ी के मोथ द्वारा लार्वा का आक्रमण सबसे पहले, मार्च के अन्त से लेकर अप्रैल के पहले सप्ताह तक देखा जाता है लेकिन यह आक्रमण अप्रैल के मध्य तक अधिकतम हो जाता है। वे पिछले वर्ष के पौधे को अपना भोजन बनाते हैं। लार्वा पौधे के शीर्ष क्षेत्र, पत्तों के कक्ष अथवा तने के किसी भी उघड़े हुए भाग से छेदना शुरू करता है। यह तने से नीचे की ओर जड़ों तक छेद करता है और फिर ऊपर की ओर जाता है; उसे खाकर तने के रास्ते को चौड़ा कर देता हैं। प्रवेश के बिन्दु से मलमूत्र, विष्ठा और लकड़ी के बुरादे बाहर निकलते हैं। ये पौधों की जड़ में जमीन पर देखे जा सकते हैं अथवा प्रवेश के बिन्दु से लटके हुए देखे जा सकते हैं। प्यूपीकरण के समय, लार्वा प्रवेश छिद्र की ओर जाता है और यहां प्यूपा बन जाता है। जब छिद्र से वयस्क निकलता है, यह अपने साथ प्यूपा के खोल को घसीटता है। खोल को छिद्र के बाहर निकला हुआ देखा जा सकता है अथवा कभी–कभी जमीन पर गिर जाता है और पौधे की जड़ में देखा जा सकता है। लार्वा अपनी पीढ़ी को पूरा करने से पहले, साल के पौधे के तने और जड़ को पूरी तरह खोखला कर देता है, परिणामस्वरूप ''पौधों की मौत'' हो जाती है। एक लार्वा एक पौधे को अपना भोजन बनाता है और जब वयस्क बन जाता है तो यह अप्रैल–मई में अन्य नये पौधों पर अण्डे देता है। बीज पर अण्डे देने का काम मई के अंत से जुलाई के अंत तक और फिर पौधों पर जुलाई के अंत से अक्तूबर तक, आरंभ होता है और शीत निद्रा में जाने तक चलता है।

कृषि–वानिकी क्षेत्र में मृदा नमूना एकत्रीकरण विधि एवं परीक्षण

डॉ. बी. एम. डिमरी, डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल एवं सुशील भट्टाराई
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

मृदा क्या है?

''मृदा/मिट्टी वह प्राकृतिक पिंड है जो प्राकृतिक द्रव्यों पर प्राकृतिक बलों के प्रभाव से बनता है। आमतौर पर विभिन्न गहराइयों के खनिज और कार्बनिक अवयवों की परत के अनुसार इसके भेद किए जाते हैं। प्रत्येक परत आकृति, भौतिक गुणों की बनावट, रासायनिक गुणों और संघटन तथा जैविक लक्षणों की दृष्टि से इसको जन्म देने वाले नीचे स्थित द्रव्य से भिन्न होता है।''

मृदा की उपरोक्त परिभाषा के अनुसार मृदा के तीन महत्त्वपूर्ण लक्षण हुए –

1 उसकी प्राकृतिक बनावट,
2 विभिन्न परतों में बंटा होना, तथा
3 मूल द्रव्य और मृदा स्तरों में आकृति संबंधी रासायनिक और जैविक अंतर।

मृदा पौधों की वृद्धि के लिए प्राकृतिक माध्यम है। मृदा बढ़ते हुए पौधों को पोषक तत्व पहुंचाती है और पौधे जानवरों के लिये चारा तथा मनुष्य के लिए भोजन व रेशा उत्पन्न करते हैं।

कुछ मृदाएं प्राकृतिक रूप से अधिक उपजाऊ होती हैं जिनमें सभी प्रकार के परमावश्यक पोषक तत्व ऐसे रूपों में विद्यमान होते हैं कि वे पौधों को शीघ्र ही मिल जाते हैं। इन मृदाओं की भौतिक स्थिति भी ऐसी होती है कि पौधों को सहारा मिल सके तथा इनमें हवा व पानी की इतनी उचित मात्रा उपलब्ध होती है कि जड़ों की अपेक्षित बढ़वार हो सके। जबकि कुछ मृदाएं अनुत्पादक होती हैं। अनुत्पादक मृदाओं के साथ चाहे कितनी ही मेहनत की जाये, फसल उगाने में कोई सफलता नहीं मिलती। अधिकतर मृदाएं इन्हीं दो चरम सीमाओं के अंतर्गत आती हैं और इन्हें अभीष्ट मात्रा में उत्पादक बनाने के लिए खाद्य व उर्वरक, सिंचाई, जल–निकास एवं मृदा सुधारकों का प्रयोग एवं उचित व्यवस्था की आवश्यकता रहती है।

मृदा का प्रकार, उसकी प्राकृतिक बनावट, खनिज और कार्बनिक अवयवों की परत से बनता है।

मृदा परीक्षण की आवश्यकता एवं नमूना एकत्रीकरण

मृदा /मिट्टी कृषि व बागवानी का आधार है। हमारे खाद्यान उत्पादन का यह एक मुख्य स्त्रोत है। यदि इसका प्रबंधन समझदारी और ध्यान से किया जाए तो यह अर्थव्यस्था में उत्पादकता की दृष्टि से सहायक हो सकता है और आर्थिक विकास को बनाए रख सकती है। इसी प्रकार गलत तरीकों जैसे कि अत्यधिक विदोहन, बेहिसाब काश्तकारी, कृषि उपकरणों/मशीनों का गलत उपयोग, मिट्टी की उपजाऊ परत को बनाए रखने में असमर्थता, आदि मिट्टी के उपजाऊपन को नष्ट करने के कारण बन सकते हैं। मिट्टी की नमीं बनाए रखने या बढ़ाने में असमर्थता भी भूमि कटाव/भूक्षरण का एक मुख्य कारण बन सकता है तथा कृषि उत्पादकता में बाधा बन सकती है। इसी प्रकार विलुप्त होता हरित व वन क्षेत्र, बढ़ता हुआ औद्योगिकरण और कृषि कार्यों में रसायनों/उर्वरकों के गलत प्रयोग ने मिट्टी संबंधी समस्याओं जैसे मिट्टी

का प्रदूषण, भूमि कटाव इत्यादि को भी उत्पन्न किया है। इन सब कारणों के संदर्भ में मिट्टी के परीक्षण की जानकारी होना अति आवश्यक है।

मृदा परीक्षण के उद्देश्य

1. मिट्टी में सुलभ पोषक तत्वों को सही मात्रा ज्ञात करना।
2. परीक्षण के आधार पर फसल की आवश्यकतानुसार उर्वरकों की सही मात्रा का निर्धारण करना व उर्वरक डालना।
3. परीक्षण के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों के लिए मृदा उर्वरता मानचित्र तैयार करना।
4. मृदा का पी.एच.मान तथा घुलनशील लवणों की मात्रा को ज्ञात कर व्यवस्था का निर्धारण करना।
5. परीक्षण के आधार पर मृदा व्यवस्था का निर्धारण करना। समस्याग्रस्त मिट्टियों के लिए मृदा सुधारकों की सही मात्रा का निर्धारण करना, जैसे ऊसर मिट्टियों के सुधार के लिऐ जिप्सम तथा अम्लीय मृदाओं के सृधार के लिए चूने की मात्रा का निर्धारण करना।

मृदा परीक्षण हेतु नमूने

किसी भी खेत व बाग की मृदा भौतिक, रासायनिक, जैविक एवं खनिजिक गुणों की दृष्टि से समरूप नहीं होती। अधिकांशतः एक ही खेत की मृदा थोड़ी–थोड़ी दूरी पर अलग–अलग गुण वाली भी हो सकती है। इसीलिए परीक्षण हेतु मृदा के ऐसे नमूने लेने होते हैं जो सारे खेत का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हों। इस प्रकार की मृदाओं में नमूने लेने से पहले खेत को मृदा के प्रकार, रंग, गठन, ढाल, पहले उगाई गई फसलों आदि के आधार पर समरूप भागों में विभाजित कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् एक समरूप भाग के विभिन्न स्थानों से 15–15 से.मी. की गहराई से अलग प्राथमिक (Primary) मिश्र नमूना एकत्र करना चाहिए। एक खेत के एक समरूप भाग के प्राथमिक नमूनों को अच्छी तरह मिला कर एक मिला जुला नमूना तैयार किया जाता है जिसे संयुक्त नमूना कहा जाता है। प्रत्येक संयुक्त नमूने में मृदा की मात्रा आधे किलो से लेकर एक किलो तक होनी चाहिए।

मृदा नमूना एकत्रीकरण हेतु उपकरण एवं सामग्री

1. खुरपी
2. फावड़ा
3. बरमा (Auger)
4. पैमाना या मीटर स्केल
5. एल्युमिनियम टैग
6. लकड़ी की खरल व मूसल
7. छलनी 2 मि.मी.
8. पोलीथीन व कपड़े की थैली।

मृदा नमूने भली भांति एकत्र करने के लिए ठीक उपकरण का होना आवश्यक होता है। नरम–नम मृदा के लिए ट्यूब बरमा, फावड़ा या खुरपी का उपयोग करना ठीक रहता है जबकि सूखे क्षेत्र की मृदा के नमूने लेने के लिए बरमा अधिक सुविधाजनक रहता है।

मृदा नमूने एकत्रित करना

(अ) साधारण क्षेत्र के नमूने

- उद्देश्य तथा खेत की स्थिति को ध्यान में रखकर मृदा का नमूना लेने के लिए उपयुक्त उपकरणों का चयन करें।
- मृदा प्रकार, रंग, गठन, ढाल, पिछली फसल आदि को ध्यान में रखकर खेत को समरूप भागों में विभक्त करें।
- जहां से नमूना लेना हो, वहां की भूमि की ऊपरी सतह को साफ करके नमूना लेने के उपकरणों की सहायता से एक तगारी में नमूना एकत्रित करें। यदि खुरपी द्वारा नमूना एकत्रित करना हो तो मृदा में अंग्रेजी के वी अक्षर के आकार का 15 से 20 से. मी. गढ्ढा बनाये और उसमें नमूने के लिए मृदा को इस तरह से काटें की उपरी सतह से गढ्ढे के तल तक का एक सा भाग दीवार के साथ–साथ की मृदा आ जाये। इस मिट्टी को तगारी में एकत्रित करें। इस प्रकार से लिए गये नमूनों को प्राथमिक नमूना कहते हैं।

- इस प्रकार के प्राथमिक नमूने खेत के विभिन्न भागों से इस बात का ध्यान रखते हुए लीजिए कि प्रत्येक प्राथमिक नमूने का भार लगभग एक समान हो।

- इस प्रकार 10 से 20 प्राथमिक नमूने प्रति समरूप भाग से एकत्रित करने के बाद इन्हें भली भांति मिश्रित कर लीजिए और उसमें से आधा से एक किलो ग्राम मृदा किसी कपड़े या पोलीथीन की थैली में भर लीजिए।

- एक लेबल की दो प्रतिलिपियां तैयार कीजिए, जिस पर कृषक का नाम, खेत की स्थिति, खेत का नम्बर, नमूने की गहराई, नमूने को एकत्रित करने की तिथि तथा नमूने को एकत्रित करने वाले का नाम आदि सूचनाएं लिखी गई हों। लेबल की एक प्रति नमूने की थैली के अन्दर रख दीजिए और दूसरी प्रति थैली के साथ बाहर बांध दिजिए।

(ब) विशिष्ट क्षेत्र के नमूने

फल के बागों में नमूने 15–15 से.मी. गहरी परतों से लगभग 1 मीटर की गहराई तक के नमूने लेना चाहिए।

समस्याग्रस्त क्षेत्रों में ऐसे स्थानों से अलग नमूना लेना चाहिए, जहां फसल की वृद्धि अन्य स्थानों से कम हो अथवा पोषक तत्वों की कमी के लक्षण विद्यमान हों। ऐसे स्थान से भी अलग नमूना लेना चाहिए जो इस प्रकार की समस्याग्रस्त स्थान से लगा हुआ हो ऐसे सभी नमूने अलग–अलग एकत्र करने चाहिए।

ऊसर मृदाओं में भौतिक रूप से अलग दिखई देने वाले सभी स्थानों से प्राथमिक नमूने लेने चाहिए और प्रत्येक प्रकार का प्रतिशत क्षेत्रफल ज्ञात करना चाहिए। गहराई वाली परतों से अलग–अलग नमूने लेना चाहिए। कंकड़ या कड़ी परत के नमूने भी अलग से एकत्रित करने चाहिए ताकि मिट्टी के भिन्न अवयवों की भी भली भांति जांच करके सिफारिश दी जा सके।

मृदा नमूना एकत्रित करने की विधि

- मृदा के ऊपर की घास साफ करें। नमूना हमेशा आड़े–तिरछे रूप में लेना चाहिए। नमूना लेने से पहले उस स्थान का पूरा ब्यौरा लेना चाहिए जैसे कि ऊँची–नीची सतह, देखने किस्म/रंग की मिट्टी इत्यादि।

- नमूना हमेशा जमीन की सतह से छह इंच की गहराई तक लेना चाहिए। लिए गए नमूने को पॉलिथीन की थैली में डालकर प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए लाया जाता है। एक स्थान के छह से दस नमूने लेने चाहिए। नमूनों की संख्या उस स्थान के क्षेत्रफल पर भी निर्भर करती है। उदाहरण के लिए छह नमूने प्रति नाली या बाइस नमूने प्रति बीघा।

- अगर खडी फसल से नमूना लेना हो तो मृदा का नमूना पौधों की कतारों के बीच खाली जगह से लें। जब खेत में क्यारियाँ बना दी गई हों या कतारों में खाद डाल दी गई हो तो मृदा का नमूना लेने के लिए विशेष सावधानी रखें।

- खाद पडे हुए खेत, चूने वाले क्षेत्र, पेड़ों के पास से, कम्पोस्ट खाद के गड्ढों आदि स्थानों से कभी भी मृदा का नमूना नहीं लेना चाहिए।

मिट्टी को मिलाना और एक ठीक नमूना बनाना

- एक खेत में विभिन्न स्थानों से पॉलिथिन की शीट में इकट्ठे किए हुए नमूने को छाया में रखकर सूखा लें। एक खेत से एकत्रित की हुई मृदा को अच्छी तरह मिलाकर एक नमूना बनाए तथा उसमें से लगभग आधा किलो **(500gm.)** मृदा का नमूना लें जो समूचे खेत का प्रतिनिधित्व करता हो।

- हर नमूने को एक साफ पॉलिथिन की थैली में डालें। ऐसी थैलियों में नमूने न डालें जो पहले खाद आदि के लिए प्रयोग में लाई जा चुकी हों या किसी और कारण से खराब हों जैसे ऊपर बताया जा चुका है। एक लेबल थैली के अंदर भी डालें। थैली अच्छी तरह से बन्द करके उसके बाहर भी एक लेबल लगा दें।

सूचना का लेबल लगाना

- हर नमूने के साथ नाम, पता और खेत का नंबर लेबल लगाए। अपने रिकॉर्ड के लिए भी उसकी एक नकल रखें । दो लेबल तैयार करें – एक थैली के अंदर डालने के लिए और दूसरा बाहर लगाने के लिए।
- लेबल पर कभी भी स्याही से न लिखें। हमेशा बॉल पैन या कॉपिंग पैंसिल से लिखें।

मृदा नमूना सूचना प्रपत्र

मृदा नमूना एकत्रित करते समय नीचे लिखी गयी सूचनाओं का संकलन करना आवश्यक होता है ताकि मृदा का क्षेत्र विशेष की व्यवस्था हेतु सही सिफारिश दी जा सके।

- कृषक का नाम व पता
- खेत का नाम या खसरा नम्बर
- नमूना लेने की तारीख
- नमूना लेने वाले का नाम
- मृदा का क्षेत्रीय नाम
- जमीन का प्रकार – सींचित, असींचित, जल ग्रसित या अन्य विशेष समस्याग्रस्त।
- प्राकृतिक जल निकास तथा क्षेत्र का भू–जलीय स्तर
- जमीन की सतह का विवरण समतल, ढ़ालू उबड़–खाबड़ इत्यादि
- अपनाया गया फसल चक्र
- खाद व उर्वरकों या सुधारकों के उपयोग की विस्तृत जानकारी
- क्षेत्र में पाये जाने वाले प्राकृतिक पेड़ों के नाम
- विशेष अतिरिक्त जानकारी यदि कोई हो।

मृदा के नमूने संसाधित करना

- नमूने को खेत से लाने के बाद किसी साफ, खुले व समतल, कागज या पॉलिथीन शीट पर फैला दें, इन्हें खाद या उर्वरक जमा किये गये स्थल से दूर रखें।
- उपयुक्त नमूने को 25 से 48 घण्टों तक छाया में सुखाइये जिससे नमूना हवा से शुष्क हो जाए तथा धूप से नमूने में उपस्थित पोषक तत्वों का अवांछनीय परिवर्तन न हो।
- लकड़ी की खरल और मूसल की सहायता से नमूने की मृदा को बारीक कीजिए और 2 मि.मी. नाप वाली छलनी से छान लीजिए।
- छनी हुई मृदा को पॉलीथीन की थैली में रख दीजिए तथा थैली को गत्ते के डिब्बे में डिब्बे पर पहले जैसा तत्सम्बन्धी आवश्यक सूचनाओं का

मृदा के नमूने को सुखाना, लकड़ी की खरल से बारीक करना और छलनी से छानना

लेबल लगा दीजिए। इस तरह से संसाधित किया गया नमूना प्रयोगशाला में विश्लेषण के लिए उपयुक्त हैं।

प्रयोगशाला विश्लेषण

विशिष्ट क्षेत्र प्रेक्षणों की जांच हेतु तथा मृदाओं को ठीक से समझने और महत्वपूर्ण व्याख्याओं को बनाने के लिए प्रयोगशाला विश्लेषण मृदा सर्वेक्षण के प्राथमिक उद्देश्य पर निर्भर करता है। खेतों या बागों से नमूने लेते समय यह परम आवश्यक है कि प्रतिनिधि परिच्छेदिका तथा सतही परतों से मृदा के नमूने एकत्र किए जाएं। मृदा नमूनों के प्रयोगशाला में जो नियमित विश्लेषण किये जाते हैं जिनमें यांत्रिक विश्लेशण, कार्बोनेट घुलनशील लवण, जैव कार्बन, नाइट्रोजन, विनिमय क्षमता और विनिमय योग्य क्षार जल–धारण क्षमता, नमी तुल्यांक, प्राप्य पोषक और पारगम्यता शामिल है। आधारिक मृदा वैज्ञानिक अध्ययनों के लिये चुने हुए प्रतिनिधि नमुनों का मृतिका के स्वरूप तथा आणविक अनुपातों के लिए और शैल–वर्णनों संबंधी तथा खनिज वैज्ञानिक अध्ययनों के लिए विश्लेशण करना आवश्यक होता है। इंजीनियरिंग, सिंचाई और जल–निकास पहलुओं जैसी कुछ विशिष्ट व्याख्याओं के लिए कुछ विशिष्ट अन्वेषण की भी आवश्यकता होती है।

प्रयोगशाला में मृदा नमूनों का विश्लेषण

मृदा नमूना एकत्रित करने में सावधानियां

- निचली, खेत के कोने, खाद के ढ़ेर वाली या उर्वरक दी गई जगहों, वृक्षों तथा मकानों के निकटवर्ती स्थान से मृदा का नमूना नही लेना चाहिए।
- फसल की कतारों का स्थान छोड़ कर कतारों के बीच के स्थान से मृदा का नमूना लेना चाहिए। यदि आवश्यक न हो तो खड़ी फसल से नमूना नही लेना चाहिए।
- नमूना एकत्रित करने के लिए साफ उपकरण एवं थैलियों का प्रयोग करना चाहिए।
- ऐसी थैलियों का प्रयोग न करें जिनमें पहलें कभी उर्वरक या खाद आदि रखा गया हो।
- वर्षा ऋतु में नमूना एकत्रित नही करना चाहिए।
- मृदा नमूने की मात्रा 500ग्राम से कम न हो।
- मृदा नमूना एकत्रित करने के साथ ही उस पर लेबल लगावें जिसे बॉलपेन या कापिंग पेंसिल से लिखें
- तैयार किये गये नमूनों को खुला नहीं छोड़ना चाहिए।
- फल बगीचे एवं दुविधाग्रस्त मृदाओं से नमूना एकत्रित करते समय विशिष्ट मृदा नमूना एकत्रित करने की विधि अपनाये।
- मृदा नमूने लेने के समय को इस तरह से निर्धारित करें कि प्रयोगशाला को विश्लेषण के लिए कम से कम 20 से 30 दिन का समय मिल जाए तथा परीक्षण परिणाम बोआई (sowing) अथवा पौधा रोपण से पहले प्राप्त हो जाए।

मिट्टी का सही नमूना लेने के बारे में तकनीकी सिफारिश

- रासायनिक खादों के प्रयोग के लिए नमूना लेना समान भूमि की निशानदेही करना:
- जो भाग देखने में मृदा की किस्म तथा फसलों के आधार पर जब निकास व फसलों की उपज के दृष्टिकोण से भिन्न हों, उस प्रत्येक भाग की निशानदेही लगाएं, तथा खेत की जमीन से नमूना लें।

- मिट्टी और पौधों का विश्लेषण प्रयोगशाला के परीक्षण में कई जानकारियाँ, जैसे मिट्टी में आवश्यक तत्वों की कमी, मिट्टी में विषैले तत्व, या उत्पादकता में कमी के कारण इत्यादि जानने के लिए किया जा सकता है। मिट्टी व पौधे के परीक्षण की सफलता पूरी तरह से उसका नमूना लेने के तरीके व बरती गई सावधानियों पर निर्भर करती है।

मिट्टी परीक्षण कितने समय के अंतराल पर कराएँ?

- कम से कम तीन या पाँच साल के अंतराल पर अपनी भूमि की मृदा का परीक्षण एक बार अवश्य करवा लें। एक पूरी फसल–चक्र के बाद मृदा का परीक्षण हो जाना अच्छा है। निम्न पोषक तत्व व नुकसानदेह भूमि की मृदा का परीक्षण करवाना अधिक आवश्यक है।

- वर्ष में जब भी भूमि की स्थिति नमूने लेने योग्य हो, नमूने अवश्य एकत्रित कर लेना चाहिए। यह जरूरी नहीं कि मृदा का परीक्षण केवल फसल बोने के समय करवाया जाए।

मिट्टी परीक्षण कहाँ करायें ?

- किसानों के लिए विभिन्न स्थानों पर मिट्टी जाँच की सुविधा निःशुल्क उपलब्ध होती है। किसान अपने–अपने खेत का सही नमूना निम्नलिखित क्षेत्रों में एवं विश्वविद्यालय में कार्यरत कर्मचारियों से मिट्टी की जाँच प्रयोगशाला में भेजकर परीक्षण करवा सकते हैं एवं जाँच रिपोर्ट प्राप्त कर सकते हैं। यह स्थान निम्नलिखित हैं–

1. जी. बी. पन्त कृषि विश्वविद्यालय (पंतनगर, उत्तराखण्ड),
2. क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र (उत्तराखण्ड),
3. जनपदीय मृदा/भूमि परीक्षण प्रयोगशाला (उत्तराखण्ड)।

संदर्भ

1. उत्तराखण्ड राज्य जैव प्रौद्योगिकी विभाग, नवधान्य, देहरादून।

❀ ❀ ❀

मैंने तोड़ा फूल, किसी ने कहा–

फूल की तरह जियो औ मरो

सदा इंसान।

– रमानाथ अवस्थी

कृषि–वानिकी योग्य आवश्यक पोषक तत्व की मात्रा एवं उपयोगिता

डॉ बी. एम. डिमरी, श्री एन. बाला एवं श्री सुशील भट्टाराई
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

1. कृषि–वानिकी एवं पोषक तत्व की उपयोगिता

मिट्टी की उत्पादकता के समुचित प्रबंधन के लिए एक ठोस उपाय की आवश्यकता है। यह सच है कि किसान रासायनिक व प्राकृतिक खाद तथा पानी का उपयोग अपने खेत की उत्पादकता और लाभ बढ़ाने के उद्देश्य से करते हैं। परंतु क्या इन चीजों का उपयोग होता है। इसके माध्यम से सभी प्रकार के उत्पादकता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। मिट्टी परीक्षण पर आधारित सुझाव के बिना एक किसान द्वारा मिट्टी के किसी आवश्यक तत्व का अधिका या कम प्रयोग किया जाने का खतरा बना रहता है व मिट्टी में आवश्यक तत्वों के असंतुलन की परेशानी सामने आ सकती है व मिट्टी का परीक्षण कराया जाना और भी जरूरी हो जाता है, जिससे कि किसान सही समय पर, सही प्रकार के पोषक तत्वों के खेती में प्रयोग कर उचित उत्पादन व लाभ प्राप्त कर सके।

भारत में 80 प्रतिशत से अधिक किसान छोटे भूमि–धारक हैं, जिनके पास दो हेक्टेयर या दो हेक्टेयर से कम और 60 प्रतिशत खेती योग्य क्षेत्र है, जो कि सिंचाई के लिए बारिश पर निर्भर हैं। सुनिश्चित सिंचाई और कम जैव विविधता के अभाव के कारण ये वर्षा आधारित खेत तनाव में हैं। कृषि–वानिकी को छोटे भूमि–धारक किसान के लिए भोजन, पोषण, ऊर्जा, रोजगार और पर्यावरण सुरक्षा की चुनौतियों का सामना करने के लिए एक समाधान के रूप में देखा जाता है। कृषि–वानिकी को बढ़ावा देने के लिए पहले के प्रयास विफल रहे हैं। अतीत की नीतिगत पहलों में राष्ट्रीय वन नीति, राष्ट्रीय कृषि नीति 2000, ग्रीनिंग इंडिया पर योजना आयोग टास्क फोर्स 2001, राष्ट्रीय बांस मिशन 2002, किसानों पर राष्ट्रीय नीति 2007 और ग्रीन इंडिया मिशन 2010 शामिल हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 को लागू करने के बाद, जिससे देश की 80 करोड़ से अधिक आबादी को भोजन उपलब्ध कराना सरकार के लिए एक कानूनी दायित्व बन जाता है,एक स्थायी तरीके से कृषि उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता महसूस हुई।

कृषि–वानिकी बेरोजगारी को कम करने में भी मदद कर सकती है। वर्तमान अनुमानों के अनुसार हमारी लकड़ी की आवश्यकता का 64 प्रतिशत खेतों पर उगाए गए पेड़ों के माध्यम से पूरा किया जाता है जो प्रति वर्ष 450 रोजगार–दिवस उत्पन्न करता है यह एक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के सदस्य श्री आशीष मंडोल का कहना है जिन्होंने कृशि–वानिकी (एग्रोफोरेस्ट्री) नीति का मसौदा तैयार करने के लिए एक समिति का गठन किया। उनके अनुसार भूमि–धारण (Land holding), का आकार सिकुड़ रहा है जिससे कृषि के साथ पेड़ की खेती का संयोजन कृषि उत्पादकता को अनुकूलित करने का एकमात्र तरीका ही बचा है। नई नीति में किसानों को कृशि वानिकी को कृषि और जलवायु परिवर्तन के खतरे के कारण भूमि और जल संसाधनों की पृष्ठभूमि के खिलाफ खाद्यान्न, चारा, जलाऊ लकड़ी और लकड़ी की मांग को पूरा करने के लिए कृषि वानिकी को कृषि व्यवसाय में लाभ लेने के लिए सक्षम बनाने की आवश्यकता है (चौबे, 2014)।

2. मिट्टी की संरचना एवं गठन

मिट्टी के खनिज कण विभिन्न आकार के होते हैं जो बालू (Sand), सिल्ट (Silt) तथा क्ले (Clay) कहलाते हैं। मिट्टी के कणों के आपसी अनुपात से मिट्टी की संरचना होती है। बालू, सिल्ट तथा क्ले के कणों के अनुपात के आधार पर मिट्टी को एक नाम

दिया जाता है। इस प्रकार जो नाम दिया जाता है वह मिट्टी की संरचना एवं गठन के अतिरिक्त मिट्टी के गुणों को भी दर्शाता है। जैसे बलुई मिट्टी और दोमट मिट्टी आदि। कणों के आकार के आधार पर मिट्टी का नामकरण सामान्यतः निम्नवत किया जाता है।

मिट्टी के खनिज कणों के आकार के आधार पर मिट्टी का नामकरण

क्रम सं0	मिट्टी के प्रकार	कण का व्यास (मि0मी0) / Size of particles (mm)		
		ब्रिटेन प्रणाली	अमेरिकी प्रणाली	अंतर्राष्ट्रीय / भारतीय प्रणाली
1	**पत्थर / कंकण (Stones/Gravel)**		>2.0	>2.0
2	मोटी बालू (Course Sand)	2.0 - 0.20	2.0 - 0.20	2.0 - 0.20
3	महीन बालू (Fine Sand)	0.2 - 0.06	0.2 - 0.05	0.2 - 0.02
4	सिल्ट (Silt)	0.06 - 0.002	0.05 - 0.002	0.02 - 0.002
	क्ले (Clay)	0.002 से कम	0.002 से कम	0.002 से कम

स्रोतः अशमान, एम.आर. और पुरी, जी (2002). आवश्यक मिट्टी विज्ञान मृदा विज्ञान के लिए एक स्पष्ट और संक्षिप्त परिचय, ब्लैकवेल साइंस लिमिटेड, ए ब्लैकवेल प्रकाशन कंपनी, ब्रिटेन।

पहाड़ी राज्य उत्तराखण्ड और हिमाचल प्रदेश में धान के खेतों की मेड़ों पर चारा, अखरोट व खूमानी के पौधों का वृक्षारोपण। चित्र में धान की रोपाई के बाद सावन माह में मेलों का भव्य आयोजन।

3. मिट्टी की अम्लीयता व क्षारीयता (पी0एच0)

- मिट्टी के पी.एच. मान द्वारा अम्लीयता व क्षारीयता का ज्ञान होता है, मिट्टी को पी.एच. मान द्वारा तीन भागों में बाँटा गया है – अम्लीय मिट्टी, क्षारीय मिट्टी एवं उदासीन मिट्टी।
- अम्लीय मिट्टी विलयन में विभिन्न तत्व आयन्स के रूप में होते हैं जैसे H, NO_3, SO_4 तथा क्षारीय आयन्स OH, Ca^{++}, Mg^{++}, Na^{+}, H^{+} आदि तत्व पाए जाते हैं।
- यदि मिट्टी में हाइड्रोजन आयन्स (H+) हाइड्रोक्साइड आयन्स (OH^-) के सन्धारण से अधिक होता है तो मिट्टी अम्लीय बनती है और अगर हाइड्रोक्साइड आयन्स (OH^-) का सन्धारण हाइड्रोजन आयन्स (H+) से अधिक होता है तो मिट्टी क्षारीय बनती है। इसके विपरीत हाइड्रोजन आयन्स (H+) एवं हाइड्रोक्साइड आयन्स (OH-) समान मात्रा में होते हैं तो मिट्टी उदासीन बनती है।
- भारत में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का पी0एच0 मान प्रायः 4 से 10 तक पाया गया है, पहाड़ी क्षेत्रों में पाई जाने वाली मिट्टियाँ प्रायः अम्लीय होती हैं और उनका पी0एच0 मान 7.0 से कम होता है, इन मिट्टियों का पी0एच0 मान 4.0 से 6.8 तक होता है।
- क्षारीय मिट्टी का पी0एच0 मान 7.5 से 10.0 तक होता है। भारत में पाई जाने वाली कृषि योग्य मिट्टी का पी0एच0 मान 6.8 से 7.5 तक अच्छा माना जाता है।

मिट्टी की अम्लीयता व क्षारीयता (पी0एच0)

अम्लीय मिट्टी				उदासीन मिट्टी	क्षारीय मिट्टी			
पी0एच0	5.5	6.0	6.5	7.0	7.5	8.0	8.5	पी0एच0
अत्यधिक अम्लीय	मध्यम अम्लीय	हल्की अम्लीय	सामान्य अम्लीय	NEUTRAL	सामान्य क्षारीय	हल्की क्षारीय	मध्यम क्षारीय	अत्यधिक क्षारीय

मिट्टी की अम्लीयता व क्षारीयता (पी0एच0) सुधारने के उपाय

मिट्टी के प्रकार	पी0एच0	सुधारने के उपाय
अम्लीय मिट्टी पहाड़ी राज्य उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर में पाई जाती है। इस भाग में ऊँची जमीन अधिक अम्लीय होती है।	इस तरह की मिट्टियों की रासायनिक प्रतिक्रिया पी0एच0 7 से कम होती है। परन्तु उपयोग को ध्यान में रखते हुए 6.5 पी0एच0 तक की मिट्टी को ही सुधारने की आवश्यकता है।	चूने का महीन चूर्ण 3 से 4 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के समय कतारों में डालकर मिट्टी को पैर से मिला दें। उसके बाद उर्वरकों का प्रयोग एवं बीज की बुआई करें। जिस फसल में चूना की आवश्यकता है उसी में चूना दें जैसे दलहनी फसल, मूँगफली, मकई इत्यादि। चूने की यह मात्रा प्रत्येक फसल में बुआई के समय दें।

4. पादप वृद्धि हेतु आवश्यक पोषक तत्व

- सभी पौधों को वृद्धि के लिए मुख्यतः 20 पोशक तत्वों की आवश्यकता होती है जैसे कि कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाईट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सोडियम, कैल्शियम, मैगनिशियम तथा सल्फर।
- अन्य सूक्ष्म तत्व आयरन, बोरोन, मैंगनीज़, कॉपर, जस्ता, मोलिबिडिनम, क्लोरीन, कोबाल्ट तथा सिलिकॉन आदि।
- पौधों को नाईट्रोजन, मिट्टी एवं हवा दोनों से प्राप्त होती है। वायु एवं जल से पौधों को कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन प्राप्त होती है। जल मिट्टी का एक प्रमुख अंग है जो आवश्यक पोशक तत्वों को पौधों द्वारा ग्रहण करने हेतु मुख्य विलयक के रूप में सर्वाधिक मात्रा में पौधों द्वारा ग्रहण किया जाता है।

5. मिट्टी के अवयव

- कृषि योग्य मिट्टी में तीन अवस्थाएँ पाई जाती हैं – ठोस, द्रव एवं गैस।
- पौधों को खाद्य तत्व प्रदान करने में केवल ठोस एवं द्रव अवस्थाएँ ही महत्तवपूर्ण हैं।
- मिट्टी के आयतन का लगभग 50 प्रतिशत भाग ठोस पदार्थों से घिरा होता है तथा शेष भाग में रन्ध्र होते हैं। जिसमें जल एवं वायु उपस्थित होती हैं, इस प्रकार मिट्टी के मुख्य अवयव खनिज पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ और जल एवं वायु हैं।

6. आवश्यक पोषक तत्व की मात्रा

- मिट्टी जाँच के निष्कर्ष के आधार पर निम्न सारिणी से भूमि उर्वरता व आवश्यक पोषक तत्व की व्याख्या की जा सकती है।

केशिया फिस्टुला पौधों के साथ सरसों और पॉपलर पौधों के साथ गेंहू की खेती
(स्रोतः तिवारी सलिल कुमार, 2008, फार्म फॉरेस्ट्री, एग्रोफॉरेस्ट्री प्रोजेक्ट रिपोर्ट, जी. बी. पंत कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड)

पोषक तत्व	पोषक तत्व की मात्रा (कि0/है0)।		
	न्यूनतम	मध्यम	अधिक
नाइट्रोजन (N)	280 से कम	280 से 560	560 से अधिक
फॉस्फोरस (P)	10 से कम	10 से 25	25 से अधिक
पोटाश (K)	110 से कम	110 से 280	280 से अधिक
जैविक कार्बन (OC)	0.5% से कम	0.5 से 0.75%	0.75% से अधिक

7. पोषक तत्व की कमी के लक्षण

- **नाइट्रोजन (N) की कमी के लक्षण**

➢ पौधों की बढ़वार रूक जाना। पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं। निचली पत्तियां पहले पीली पड़ती हैं तथा नयी पत्तियां हरी बनी रहती हैं। नाइट्रोजन की अत्यधिक कमी से पौधों की पत्तियां भूरी होकर मर जाती हैं।

- **फॉस्फोरस (P) की कमी के लक्षण**

➢ पौधों का रंग गाढ़ा होना। पत्तों का लाल या बैंगनी होकर स्याहीयुक्त लाल हो जाना। कभी कभी नीचे के पत्ते पीले होते हैं, आगे चलकर डंठल या तना का छोटा हो जाना। कल्लों की संख्या में कमी।

- **पोटाश (K) की कमी के लक्षण**

➢ पत्तियों का नीचे की ओर लटक जाना। नीचे के पत्तों का मध्य भाग ऊपर से नीचे की ओर धीरे – धीरे पीला पड़ना। पत्तियों का किनारा पीला होकर सूख जाना और धीरे–धीरे बीच की ओर बढ़ना। कभी– कभी गाढ़े हरे रंग के बीच भूरे धब्बे का बनना। पत्तों का आकार छोटा होना।

तालिका 1. जैविक खादों में पोषक तत्वों की मात्रा

क्र0स0	जैविक खाद का नाम	पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा		
		नाइट्रोजन (N)	फॉस्फोरस (P)	पोटाश (K)
1	गोबर की खाद	0.5	0.3	0.4
2	कम्पोस्ट	0.4	0.4	1.0
3	अंडों की खली	4.2	1.9	1.4
4	नीम की खली	5.4	1.1	1.5
5	करंज की खली	4.0	0.9	1.3
6	सरसो की खली	4.8	2.0	1.3
7	तिल की खली	5.5	2.1	1.3
8	कुसुम की खली	7.9	2.1	1.3
9	बादाम की खली	7.0	2.1	1.5

स्रोतः उत्तराखण्ड राज्य जैव प्रौद्योगिकी विभाग, नवधान्य, देहरादून।

8. पोषक तत्वों की अनुशंसित या वांछित मात्रा

➢ पोषक तत्वों की अनुशंसित या वांछित मात्रा के लिए किसी जैविक खाद या उर्वरक की मात्रा उपरोक्त तालिका से जानी जाती है।

➢ फॉस्फोरस की कमी को दूर करने के लिए अम्लीयता को दूर करने के लिए अम्लीय मिट्टी में रॉक फॉस्फेट को मिलाया जाता है।

तालिका 2. रासायनिक उर्वरक में पोषक तत्वों की मात्रा

क्र0सं0	उर्वरक का नाम	पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा		
		नाइट्रोजन (N)	फॉस्फोरस (P)	पोटाश (K)
1	यूरिया	46.0	–	–
2	अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	26.0	–	–
3	अमोनियम नाइट्रेट	35.0	–	–
4	कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट	25.0	–	–
5	डाई कैल्शियम फॉस्फेट	–	38.0	–
6	म्यूरिएट ऑफ पोटाश	–	–	60.0
7	पौटैशियम नाईट्रेट	13.0	–	40.0
8	डाई अमोनियम फॉस्फेट	18.0	46.0	–
9	एन.पी.के.	12.0	32.0	16.0

स्रोतः उत्तराखण्ड राज्य जैव प्रौद्योगिकी विभाग, नवधान्य, देहरादून ।

➢ कृषि विश्वविद्यालय के अन्तगर्त किये गये शोध के आधार पर रॉक फॉस्फेट के व्यवहार से निम्नलिखित लाभ मिला हैः

- रॉक फॉस्फेट से पौधों को धीरे–धीरे पूर्ण जीवनकाल तक फॉस्फोरस मिलता रहता है।
- रॉक फॉस्फोरस के लगातार मिलाने से मिट्टी में फॉस्फेट की मात्रा बनी रहती है।
- रॉक फॉस्फेट के मिलाने से फॉस्फेट पर कम लागत आती है।
- अगर मसूरी रॉक फॉस्फेट का प्रयोग लगातार 3–4 वर्षों तक किया जाता है तो अम्लीय मिट्टी की अम्लीयता में भी कुछ कमी आती है और पौधों को फॉस्फेट के अलावा कैल्शियम की मात्रा भी मिलती है।

9. रॉक फॉस्फेट का व्यवहार कैसे करें?

➢ मसूरी रॉक फॉस्फेट जो बाजार में मसूरी फॉस के नाम से उपलब्ध है, का प्रयोग निम्नलिखित किन्हीं एक विधि से किया जा सकता हैः

1. फॉस्फेट की अनुशंसित मात्रा का ढाई गुना रॉक फॉस्फेट खेत की अन्तिम तैयारी के समय छिड़काव करें। अथवा
2. बुआई के समय कतारों में फॉस्फेट की अनुशंसित मात्रा का एक तिहाई सुपर फॉस्फेट एवं दो तिहाई रॉक फॉस्फेट के रूप में मिश्रण बनाकर डाल दें। अथवा
3. खेत में नमीं हो या कम्पोस्ट डालते हों तो बुआई के करीब 20–25 दिन पूर्व ही फॉस्फेट की अनुशंसित मात्रा रॉक फॉस्फेट के रूप में छिड़काव करके अच्छी तरह मिला दें।

10. कृषि वानिकी की उपयोगिता

- मानव जीवन के लिए संतुलित पर्यावरण आवश्यक है। वनों की कटाई, पानी की कमी विभिन्न कारकों द्वारा मृदा का क्षरण होने से पर्यावरण–संतुलन निरंतर बिगड़ता जा रहा है। इसके लिए आवश्यक है की ऐसी कृषि पद्धति अपनाई जाए जिससे खाद्यान्न, लकड़ी व चारा इत्यादि की पूर्ति भी हो जाए और पर्यावरण का संतुलन भी बना रहे।
- उपरोक्त संदर्भ में कृषि–वानिकी की महत्ता वर्तमान समय में काफी बढ़ गई है। इसके द्वारा भूमि की उर्वरा क्षमता बढ़ाई जा सकती है, सीमित भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है, पर्यावरण संतुलन बनाए रखा जा सकता है, ईधन एवं इमारती लकड़ी प्राप्त की जा सकती है, बंजर भूमि का सुधार किया जा सकता है, व पशुओं को वर्ष भर हरा चारा मिल सकता है। इसके अलावा उद्योगों हेतु कच्चे माल का उत्पादन किया जा सकता है।
- वृक्ष ग्रीष्म ऋतु में भूमि का तापमान बढ़ने से रोकते हैं जिससे भूमि में पाए जाने वाने सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट होने से बचाया जा सकता है जो हमारी फसलों के लिए लाभकारी होते हैं। यदि सूखा, ओलावृष्टि, आँधी, तूफान, इत्यादि प्राकृतिक प्रकोपों के कारण सालाना फसल नष्ट हो जाती है तो भी वृक्षों द्वारा हमें कुछ न कुछ प्राप्त हो सकता है।
- कृषि–वानिकी का भविष्य बहुत उज्जवल है। कृषि–वानिकी अपनाकर कृषि उत्पादन को कई गुना बढ़ाया जा सकता है।
- कृषि–वानिकी से न केवल भूमि की जल–धारण क्षमता बढ़ती है अपितु भूमि और अधिक उपजाऊ हो जाती है। फलीदार समूह के वृक्ष भूमि में नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक होते हैं।
- आजकल कई क्षेत्रों में कृषि–वानिकी द्वारा कृषि मजदूरों को सतत् रोजगार भी प्रदान किया जा रहा है। इस प्रणाली को अपनाने से भूमि की उपयोगिता व महत्ता बढ़ती जाती है और किसी एक फसल के नष्ट हो जाने पर भी अन्य फसलों से उत्पादन व आमदनी के द्वार खुले रहते हैं जिससे कि सालाना फसलों के मुकाबले कृषकों को खेती में जोखिम व नुकसान की संभावनाएं न्यूनतम हो जाती हैं।

संदर्भ

1. उत्तराखण्ड राज्य जैव प्रौद्योगिकी विभाग, नवधान्य, देहरादून ।
2. अशमान, एम.आर. और पुरी, जी (2002), आवश्यक मिट्टी विज्ञान, मृदा विज्ञान के लिए एक स्पष्ट और संक्षिप्त परिचय, ब्लैकवेल साइंस लिमिटेड, एक ब्लैकवेल प्रकाशन कंपनी, ब्रिटेन।
3. चौबे, जितेंद्र (2014), भारत एक कृषि व्यवसाय नीति अपनाने वाला पहला देश है। स्थायी कृषि के लिए खेतों पर तेजी से बढ़ते पेड़ों और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए दिल्ली में कृषि पर चार दिवसीय विश्व कांग्रेस, शुक्रवार 14 फरवरी 2014 को प्रस्तुत किया ।
4. तिवारी, सलिल कुमार (2008), फार्म फॉरेस्ट्री, एग्रोफोरेस्ट्री प्रोजक्ट रिपोर्ट, जी. बी. पंत कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड़।

लिखना

ठोस लिखना या तरल लिखना
दोस्त मेरे कुछ सरल लिखना

आस्था के सिन्धु मंथन में
नाम पर मेरे गरल लिखना

भोर में भी एक सो रहे हैं जो
नींद में उनकी खलल लिखना

पाँव जब पथ से भटकते हों
गाँव की कोई मसल लिखना

झूठ का चेहरा उतर जाए
बात जब लिखना असल लिखना

पेट की जो आग है उसको
आग में झुलसी फसल लिखना

विविधा

पर्यावरण प्रदूषण में प्लास्टिक की भूमिका एवं इसके निदान के उपाय

डॉ. राजेश कुमार मिश्र
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

अत्यन्त गंभीर तथ्य है कि वर्तमान समय में सम्पूर्ण पृथ्वी पर लगभग 1500 लाख टन प्लास्टिक एकत्रित हो चुका है जो पर्यावरण को लगातार क्षति पहुंचा रहा है। आज वैश्विक स्तर पर प्रतिव्यक्ति प्लास्टिक का उपयोग जहां 18 किलोग्राम है वहीं इसकी रिसायक्लिंग मात्र 15.2 प्रतिशत ही है। प्लास्टिक की रिसायक्लिंग को भी सुरक्षित नहीं माना गया है। रिसायक्लिंग प्लास्टिक से और अधिक प्रदूषण फैलता है। सामान्यतौर पर प्लास्टिक पर प्रतिबंध करके उसका सर्वोत्तम विकल्प प्राकृतिक रूप से विघटित होने वाली थैलियाँ होती हैं जो 3 से 6 महीनों में अपने आप ही नष्ट होने लगती हैं।

वर्तमान समय में प्लास्टिक प्रदूषण एक गंभीर विश्वव्यापी समस्या बन गई है। संपूर्ण देश–धरती पर प्रत्येक वर्ष अरबों की संख्या में प्लास्टिक थैलियाँ फेंक दी जाती हैं। चतुर्दिक बिखरी यही प्लास्टिक थैलियाँ नालियों, नालों में जाकर उनके प्रवाह को अवरूद्ध करती हैं, आगे बहकर यह अंततः नदियों एवं सागरों में पहुँच जाती हैं। यह चूंकि प्राकृतिक रूप से विघटित नहीं होती इसलिए नदियों, सागरों आदि के जीवन और पर्यावरण को बुरी तरह से प्रभावित करती हैं। प्लास्टिक प्रदूषण के कारण आज वैश्विक स्तर पर लाखों की संख्या में पशु पक्षी मारे जा रहे हैं जो पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से अत्यधिक चिंतनीय पहलू है।

आज विश्व का प्रत्यक देश प्लास्टिक से प्रदूषण की विनाशकारी समस्याओं से जूझ रहा है। हमारे देश में तो प्लास्टिक प्रदूषण से विशेषकर नगरीय पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित हुआ है। नगरों में प्लास्टिक थैलियों को खाकर भारी संख्या में गायें, भैंसे व अन्य पशु पक्षी मारे जा रहे हैं। प्लास्टिक एक बार निर्मित हो जाने के बाद प्रकृति में स्थाई तौर पर बना रहता है तथा प्रकृति में इसे नष्ट कर सकने वाले किसी सक्षम सूक्ष्म जीवाणु के अभाव के कारण यह कभी भी नष्ट नहीं हो पाता। यह जल प्रदूषण बढ़ाता है तथा वृहद स्तर पर जल प्रवाह को बाधित करता है जिससे ऐसे दूषित जल में मक्खियाँ, मच्छर एवं जहरीले कीट पैदा होते हैं जिससे मलेरिया, डेंगू जैसे रोग फैलते हैं।

खाने की तलाश में जानवर प्लास्टिक की थैलियां खा जाते हैं। (स्रोत–गूगल)

प्लास्टिक पैकिंग से खाद्य सामग्री एवं औषधियों के पैक किये जाने से इनके साथ प्लास्टिक रासायनिक प्रक्रिया करके उन्हें दूषित और खराब कर देता है। इनका उपयोग भयानक बीमारियों को बुलावा देता है। प्लास्टिक को जलाये जाने से निकलने वाली विषाक्त गैसों के परिणाम स्वरूप गंभीर वायु प्रदूषण फैलता है जिससे कैंसर, शारीरिक विकास में अवरोध एवं गंभीर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। प्लास्टिक को गड्ढों में गाड़ दिये जाने से पर्यावरण को हानि पहुंचती है, मिट्टी और भूमिगत जल विषाक्त होने लगता है और धीरे–धीरे पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ने लगता है। प्लास्टिक उद्योग में कार्य करने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता, विशेषकर फेफड़े, किडनी और स्नायुतंत्र प्रभावित होते हैं।

2016 की एक रिपोर्ट के मुताबिक हमारे देश में प्रतिदिन 15000 टन प्लास्टिक अपशिष्ट निकलता है जो कि दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। प्लास्टिक के बढ़ते उपयोग का इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि पूरे विश्व में इतना प्लास्टिक हो गया है कि इस प्लास्टिक से पृथ्वी को 5 बार लपेटा जा सकता है और इस का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा महासागरों में फैला हुआ है।

प्लास्टिक को बनाने के लिए कई जहरीले रसायन काम में लाये जाते हैं जिसके कारण यह जहां भी पड़ा रहता है धीरे–धीरे वहां पर बीमारियो और प्रदूषण को जन्म देता है। प्लास्टिक मानव की दिनचर्या में इस तरह से शामिल हो चुका है कि जब सुबह वह उठता है तो टूथ ब्रश भी प्लास्टिक का होता है और जिस बाल्टी से नहाता है वह भी प्लास्टिक की होती है, जिस चम्मच से खाता है वह भी प्लास्टिक की होती है और जब वह ऑफिस के लिए निकलता है तो अपना खाना भी प्लास्टिक के डिब्बे में लेकर जाता है और पानी भी प्लास्टिक की बोतल में ही लेकर जाता है। इसका मतलब प्लास्टिक मानव जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। एक अध्ययन में सामने आया है कि एक ही प्लास्टिक की बोतल को बार–बार पीने के पानी के काम में लेने पर उसमें कई जहरीले पदार्थ घुलने लग जाते हैं और इससे कैंसर जैसी भयानक बीमारियां भी हो सकती है।

एक प्लास्टिक का बैग अपने वजन से 2000 गुना ज्यादा वजन उठा सकता है और इसको कहीं पर भी ले जाया जाना आसान होता है। मानव ने जिस प्रकार तरक्की की है मानव उतना ही आलसी होता जा रहा है जिसके कारण वह कहीं पर भी जब भी वस्तु खरीदने जाता है तो वह घर से कपड़े, कागज या जूट का थैला नहीं ले जाता जिसके कारण सामान बेचने वाले विक्रेता मजबूरी में पॉलिथीन के बैगों में लोगों को सामान देते हैं जिस कारण प्लास्टिक का उपयोग बहुत मात्रा में बढ़ गया है।

आजकल तो फास्ट फूड का जमाना है तो लोग रास्ते में चलते ही खाना पसंद कर रहे हैं और यह खाना भी उन्हें प्लास्टिक की थैलियों में ही दिया जाता है। आजकल हर वस्तु ऐसे ही लिपटी हुई आती है।

प्लास्टिक का पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीव जंतुओं के साथ साथ अन्य जीवन के लिए जरूरी घटकों पर भी इसका बहुत ज्यादा दुष्प्रभाव पड़ता है। प्लास्टिक एक धीमे जहर का काम कर रहा है। यह मानव के जीवन में इस तरह से घुल चुका है कि मानव ना चाहते हुए भी इसका उपयोग कर रहा है।

प्लास्टिक ऐसे पदार्थों को मिलाकर बनाया जाता है जो कि हजारों सालों तक नष्ट नहीं होता है और यही आजकल जल प्रदूषण का भी कारण बन रहा है। मानव द्वारा ज्यादातर प्लास्टिक की ऐसी वस्तुएं बनाई जाती हैं जो कि एक बार काम लेने के बाद फेंक दी जाती हैं जिसके कारण यह फेंकी हुई वस्तुएं इधर–उधर जमा होती रहती है और फिर जब बारिश होती है तो यह पानी के साथ बहकर नदियों और नालों में हजारों सालों तक पड़ा रहता है और इस से धीरे धीरे जहरीले पदार्थ निकलते रहते हैं जो कि जल में घुल जाते हैं और उसे प्रदूषित कर देते हैं।

प्लास्टिक की विघटन प्रक्रिया में 500 से हजारों साल लग जाते हैं, इसलिए जब प्लास्टिक को भूमि के अंदर गाड़ दिया जाता है तो यह विघटित नहीं होता है और जहरीली गैसें और पदार्थ छोड़ता रहता है जिसके कारण वहां की भूमि बंजर हो जाती है और अगर कोई फसल पैदा भी होती है तो उसमें जहरीले पदार्थ मिले होने के कारण यह मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है।

लोग समझते हैं कि प्लास्टिक को जलाने से इस को नष्ट किया जा सकता है और प्रदूषण से भी बचा जा सकता है। लेकिन होता है बिल्कुल इसके उलट, क्योंकि प्लास्टिक को जब बनाया जाता है तो इसमें बहुत सारे जहरीले रसायनों का इस्तेमाल होता है और जब इस को जलाया जाता है तो वह सारे रसायन हवा में फैल जाते हैं और वायु प्रदूषण का कारण बनते हैं। प्लास्टिक को जलाए जाने के कारण जो धुंआ उत्पन्न होता है अगर उसमें ज्यादा देर तक सांस ले ली जाए तो मानव को कई सारी बीमारियां हो सकती हैं।

प्लास्टिक से बनी वस्तुओं में जायलेन, इथिलेन ऑक्साइड और बेंजेन जैसे जहरीले रसायनों का इस्तेमाल किया जाता है। समुद्री जीव इस प्लास्टिक को खाना समझकर खा लेते हैं जिसके कारण इनके फेफड़ों या फिर श्वास नली में यह प्लास्टिक फंस जाता है और उनकी मृत्यु हो जाती है। जिसके कारण आए दिन समुद्री जीवों की जनसंख्या कम हो रही है। गायों या अन्य पशुओं द्वारा भी प्लास्टिक की झिल्लियों को खा लिया जाता है। यह प्लास्टिक जानवरों के फेफड़ों में फंस जाता है जिसके कारण उन्हें सांस लेने में दिक्कत होती है और उनकी मृत्यु हो जाती है।

प्लास्टिक के दुष्प्रभाव को रोकने के कुछ प्रभावी उपाय

- प्लास्टिक से बनी वस्तुओं का बहिष्कार करें।
- प्लास्टिक की जगह कपड़े, कागज और जूट से बने थैलों का इस्तेमाल करें।
- प्लास्टिक के बैग और बोतल जो कि इस्तेमाल के योग्य हों, उन्हें फेंके नहीं, उनका तब तक इस्तेमाल करें जब तक कि वह खराब ना हो जाएं। प्लास्टिक से बनी हुई ऐसी वस्तुओं के इस्तेमाल से बचें जिन्हें एक बार इस्तेमाल में लिए जाने के बाद फेंकना पड़े।
- खाने की वस्तुओं के लिए स्टील या फिर मिट्टी के बर्तनों को प्राथमिकता दें।
- प्लास्टिक की पीईटीई (PETE) और एचडीपीई (HDPE) प्रकार के सामान चुनिए क्योंकि इस प्रकार के प्लास्टिक को रिसाइकिल करना आसान होता है।
- प्लास्टिक के दुष्प्रभाव का प्रचार प्रसार किया जाना चाहिए।
- कभी भी प्लास्टिक को स्वयं नष्ट करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे हम किसी ना किसी प्रकार के प्रदूषण को ही बढ़ावा देंगे। इससे अच्छा होगा कि हम किसी रिसाइकिल करने वाली कंपनी को यह प्लास्टिक दे दें।

यह गहरी चिंता का विषय है कि फिलहाल 1500 मिलियन टन का प्लास्टिक पूरे ग्रह पर एकत्र हो गया है जो लगातार पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है। आज प्रति व्यक्ति प्लास्टिक का उपयोग 18 किलोग्राम है जबकि इसकी रीसाइक्लिंग केवल 15.2 प्रतिशत है। इसके अलावा प्लास्टिक रीसाइक्लिंग इतनी सुरक्षित नहीं माना जाता है क्योंकि प्लास्टिक के रीसाइक्लिंग के माध्यम से अधिक प्रदूषण फैलता है।

प्लास्टिक मुख्य रूप से पेट्रोलियम पदार्थों से उत्सर्जित सिंथेटिक रेजिन से बना है। रेजिन में प्लास्टिक मोनोमर्स अमोनिया और बेंजीन का संयोजन करके बनाया जाता है। प्लास्टिक में क्लोरीन, फ्लोरीन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और सल्फर के अणु शामिल हैं।

अनुसंधान ने दिखाया है कि प्लास्टिक की बोतलों और कंटेनरों का उपयोग बेहद खतरनाक है। एक प्लास्टिक के पैकेट में गर्म भोजन या पानी होने से कैंसर हो सकता है। जब अत्यधिक सूरज की रोशनी या तापमान के कारण प्लास्टिक गर्म हो जाता है तो उसमें हानिकारक रासायनिक डाईऑक्सीजन का रिसाव शरीर को भारी नुकसान पहुंचाता है।

40 माइक्रोन से कम मोटाई के प्लास्टिक बैग जैव निम्नीकरणीय नहीं हैं। पाइपों, खिड़कियों और दरवाजों के निर्माण में इस्तेमाल पीवीसी विनाइल क्लोराइड के पोलीमराइजेशन द्वारा बनाई गई है। इसकी संरचना में इस्तेमाल रसायन मस्तिष्क और यकृत का कैंसर पैदा कर सकता है। मशीनों की पैकिंग बनाने के लिए बेहद कठोर पोलीकार्बोनेट प्लास्टिक फोस्जिन बिस्फेनोल यौगिकों के संतृप्त से प्राप्त किया जाता है। ये घटक अत्यधिक जहरीली और नम गैस उत्पन्न करती हैं। कई प्रकार के प्लास्टिक के निर्माण में फार्मेल्डिहाइड का उपयोग किया जाता है। यह रसायन त्वचा पर चकत्ते पैदा कर सकता है। कई दिनों तक इसके संपर्क में रहने से अस्थमा और श्वसन रोग हो सकते हैं।

कई कार्बनिक यौगिकों को प्लास्टिक में लचीलापन पैदा करने के लिए जोड़ा जाता है। कई प्रकार के पॉलीथीन गैसीकरण कैसिनोजेनिक यौगिक हैं। प्लास्टिक में पाए जाने वाले ये जहरीले पदार्थ प्लास्टिक के गठन के दौरान उपयोग किए जाते हैं। तैयार (ठोस) प्लास्टिक के बर्तन में अगर भोजन सामग्री को लंबे समय तक रखा जाता है या शरीर की त्वचा लंबे समय तक प्लास्टिक के संपर्क में होती है तो प्लास्टिक में छुपे रसायन कहर बरपा सकते हैं।

प्लास्टिक अपशिष्ट जलाने से आमतौर पर कार्बन डाइऑक्साइड और कार्बन मोनोऑक्साइड गैसों का उत्सर्जन होता है जो श्वसन नालिका या त्वचा की बीमारियों का कारण बन सकता है। इसके अलावा पॉलीस्टाइन प्लास्टिक के जलने से क्लोरो–फ्लोरो कार्बन का उत्पादन होता है जो वायुमंडल के ओजोन परत के लिए हानिकारक होता है। इसी तरह पोलिविनाइल क्लोराइड के जलने से क्लोरीन और नायलॉन का उत्पादन होता है और पॉलीयोरेथन नाइट्रिक ऑक्साइड जैसी विषाक्त गैसें निकलती हैं।

यद्यपि प्लास्टिक निर्मित सामान गरीब और मध्यम वर्ग के लोगों की जिंदगी की गुणवत्ता में सुधार करने में सहायक होते हैं पर साथ ही वे इसके लगातार उपयोग से उत्पन्न खतरे से अनजान हैं। प्लास्टिक एक ऐसी वस्तु बन गई है जो पूजा, रसोईघर, बाथरूम, बैठक कमरे और पढ़ने के कमरे में इस्तेमाल होने लगा है। इतना ही नहीं अगर हमें बाजार से राशन, फलों, सब्जियां, कपड़े, जूते, दूध, दही, तेल, घी और फलों का रस आदि जैसे किसी भी वस्तु को लेकर आना पड़े तो पॉलीथीन का व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाता है। आज की दुनिया में बहुत सारे फास्ट फूड है जिन्हें पॉलिथीन में पैक किया जाता है।

प्लास्टिक कैरी बैग ने आधुनिक सभ्यता में एक बड़ी समस्या पैदा की है। एक छोटे से शहर में पांच से सात क्विंटल बैग बेचे जाते हैं। कैरी बैग कृषि क्षेत्रों में फसलों के प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में बाधा डालते हैं।

इस संबंध में राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल ने बार–बार अपनी नाराजगी व्यक्त की है। उसने राज्य सरकारों को पूरे देश में प्लास्टिक के अंधाधुंध इस्तेमाल पर फटकार लगाई है।

जहां भी मानव ने अपने कदम रखे वहीं पॉलिथीन प्रदूषण को फैलाया। यह हिमालय घाटियों को भी दूषित कर रहा है। यह इस स्तर तक बढ़ गया है कि सरकार भी इसके रोकथाम के लिए प्रचार कर रही है। पिकनिक या सैर–सपाटे के सभी स्थान भी इससे पीड़ित हैं।

सागर में विभिन्न जगहों से कई सालों तक प्लास्टिक के कई छोटे–छोटे टुकड़े आने से वे बहुत बड़ी मात्रा में एकत्रित हो गए हैं। इनकी मात्रा का अनुमान लगभग 100 से 1200 टन है। वे ग्रीनलैंड के समुद्र में प्रचुर मात्रा में हैं। यह आशंका है कि आर्कटिक महासागर में तेजी से बढ़ते प्लास्टिक के कारण आसपास के देशों के समुद्र प्रदूषित हो सकते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि लाखों टन प्लास्टिक अपशिष्ट दुनिया के महासागरों में आकर मिल गया है और यह दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है जो एक खतरनाक संकेत है।

समुद्र में इकट्ठा होता प्लास्टिक (स्रोत–गूगल)

प्लास्टिक अपशिष्ट के अन्य समाधानों में से एक इसकी रीसाइक्लिंग है। रीसाइक्लिंग का अर्थ है प्लास्टिक की बर्बादी से प्लास्टिक वापस लेकर प्लास्टिक की नई चीजों को बनाना। प्लास्टिक रीसाइक्लिंग को पहली बार 1970 में कैलिफोर्निया फर्म द्वारा तैयार किया गया था। इस फर्म ने प्लास्टिक स्पिल्स और प्लास्टिक की बोतलों से जल निकासी के लिए टाइल तैयार की थी लेकिन प्लास्टिक की रीसाइक्लिंग के काम की अपनी सीमाएं है क्योंकि रीसाइक्लिंग की प्रक्रिया काफी महंगी है और अधिक प्रदूषण के भार से लदी हुई है।

तथ्य की बात करें तो अधिकांश प्लास्टिक जैविक रूप से गैर–अवक्रमणीय है। यही मुख्य कारण है कि आज का उत्पादित प्लास्टिक कचरा सैकड़ों हजारों साल तक चलेगा जो हमारे जीवन और पर्यावरण के लिए यूँ ही परेशानी बनाए रखेगा। ऐसी स्थिति में हमें प्लास्टिक के उत्पादन और निपटान के बारे में गंभीरता से विचार करना चाहिए। चूंकि समुद्र प्रदूषण पृथ्वी के प्रदूषण का विस्तार है इसलिए यह दुनिया के प्रदूषण से कहीं अधिक खतरनाक हो सकता है।

यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि हम पॉलीथीन या प्लास्टिक के युग में रह रहे हैं। हर कोई जानबूझकर पॉलीथीन के दुष्प्रभावों से अनजान हो जाता है जो कि एक प्रकार का जहर है, जो अंततः पर्यावरण को नष्ट कर देगा। अगर हम भविष्य में प्लास्टिक से छुटकारा चाहते हैं तो इससे पहले कि बहुत देर हो जाए और वातावरण दूषित हो जाए हमें प्लास्टिक के प्रयोग को बंद करना होगा।

पंथ होने दो अपरिचित

पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला!

और होंगे चरण हारे,
अन्य हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे;
दुखव्रती निर्माण-उन्मद
यह अमरता नापते पद;
बाँध देंगे अंक-संसृति से तिमिर में स्वर्ण बेला!

दूसरी होगी कहानी
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी;
आज जिसपर प्रलय विस्मित,
मैं लगाती चल रही नित,
मोतियों की हाट औ, चिनगारियों का एक मेला!

हास का मधु-दूत भेजो,
रोष की भ्रूभंगिमा पतझार को चाहे सहेजो;
ले मिलेगा उर अचंचल
वेदना-जल स्वप्न-शतदल,
जान लो, वह मिलन-एकाकी विरह में है दुकेला!

– महादेवी वर्मा

शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा

श्री अवनीश कुमार
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

यह अनुभवजन्य है कि मातृभाषा या बोली में हम खुद को सर्वाधिक बेहतर तरीके से प्रकट कर पाते हैं। लेकिन पिछले दशकों में शिक्षा के निजीकरण और कुकुरमुत्तों की तरह खुले निजी स्कूलों ने शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी मीडियम को लगातार किसी बहुत बड़ी उपलब्धि की तरह प्रचारित किया है। सामान्य जनमानस और संचार माध्यमों में भी लगातार इस बात को बल दिया गया है कि अंग्रेजी न जानने से आपको रोजगार मिलने में कठिनाई होती है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए इस लेख में शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण मिथकों पर प्रकाश डाला गया है।

शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा या बोली के संबंध में कई महत्वपूर्ण वैज्ञानिक शोध किए गए हैं। ये शोध खासतौर से हिंदीभाषी क्षेत्रों के लिए काफी महत्वपूर्ण हैं जहां बहुत सारे अंग्रेजी मीडियम निजी स्कूल खुल गए हैं और सरकारी स्कूलों में शिक्षा के गिरते स्तर का हवाला देते हुए बहुत अच्छी शिक्षा देने का दावा करते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के संगठन (यूनेस्को) की पुस्तक 'शिक्षा में स्थानीय भाषाओं का प्रयोग' कहती है– ''यह स्वतः सिद्ध है कि बच्चे के लिए शिक्षा का सबसे बढ़िया माध्यम उसकी मातृभाषा है। मनोवैज्ञानिक आधार पर यह सार्थक चिन्हों की ऐसी प्रणाली है जो प्रकटावे और समझ के लिए उसके दिमाग में स्वंयचालक रूप में काम करती है, सामाजिक आधार पर जिस जनसमूह के सदस्यों से उसका संबंध होता है उसके साथ एकात्म होने का साधन है, शैक्षिक आधार पर वह मातृभाषा के माध्यम से एक अनजाने माध्यम की अपेक्षा तेजी से सीखता है।''

दरअसल यूनेस्को का यह मत विस्तृत अध्ययनों पर आधारित है। यूनेस्को की इसी पुस्तक में आगे कहा गया है – ''शिक्षा के लिए मातृभाषा का प्रयोग जितनी दूर तक संभव हो किया जाना चाहिए।''

शिक्षा में मातृभाषा के महत्व पर बात यहीं समाप्त नहीं होती। संयुक्त राष्ट्र की 2004 की विकास रिपोर्ट में ये दर्ज है – ''फिलीपीन में दो भाषाई शिक्षा नीति की दो भाषाओं (टागालोग और अंग्रेजी) में पारंगत विद्यार्थी उन विद्यार्थियों को पीछे छोड़ देते थे जो घर में टागालोग में बात नहीं करते थे।''

यह साफ है और विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों में साबित भी हो चुका है कि बेहतर समझ के लिए मातृभाषा में शिक्षा के माध्यम के अलावा कोई विकल्प नहीं है। यह न सिर्फ आपकी प्राथमिक समझ को मजबूत करती है बल्कि अन्य भाषाओं को सीखने में भी मदद करता है। हम देखते हैं कि पूरी दुनिया में यह बार–बार साबित हो चुका है कि शिक्षा में जितनी सफलता मातृभाषा के माध्यम में प्राप्त होती है उतनी सफलता विदेशी भाषा माध्यम से नहीं हो सकती। दरअसल इसके कुछ विशेष कारण हैं। बच्चा अपनी बात अपनी भाषा में आसानी से कह सकता है क्योंकि ऐसे में उसे गलतियां करने का डर नहीं होता। मातृभाषा आधारित शिक्षा में विद्यार्थी सीखने की प्रक्रिया में जोशपूर्ण तरीके से हिस्सा लेते हैं क्योंकि जो उनको बताया जा रहा होता है या जो उनसे पूछा जा रहा होता है, उसे वे समझ रहे होते हैं। संकल्पों के सृजन और यथार्थ के विवरण हेतु अपने विचारों को प्रकट करने के लिए और जो संकल्प उनके दिमाग का हिस्सा हैं उनमें नए संकल्प शामिल करने के लिए वे मातृभाषा का तुरंत प्रयोग कर सकते हैं।

दरअसल उस वक्त जब विचार नए रूप धारण कर रहा होता है, बच्चों को अपनी बात कहने के लिए

अपनी भाषा या बोली से किसी अन्य भाषा में अनुवाद करने और समानार्थी शब्द ढूढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती। दरअसल यह बात विद्यार्थियों के साथ ही शिक्षकों पर भी समान रूप से लागू होती है जब वे स्थानीय भाषा में द्वितिय भाषा से अधिक पारंगत होते हैं। क्योंकि तब वे अपने विद्यार्थी के संप्रेषण के आधार पर ये आसानी से जान सकते हैं कि उन्होनें क्या सीख लिया है और कहां अभी कमी रह गई है। न सिर्फ शिक्षक बल्कि मातृभाषा आधारित शिक्षा माता–पिता का भी सशक्तिकरण करती है क्योंकि ऐसे में वे अपने बच्चे की शिक्षा में सक्रिय रूप से भाग ले सकते हैं क्योंकि स्कूल की भाषा और समूह की भाषा एक ही होती है।

भाषाविदों और शिक्षाविदों का यह भी मानना है कि यदि मातृभाषा में शिक्षा नहीं होती है तो बच्चा अपने बहुत साल नई भाषा सीखने में ही बर्बाद कर लेता है। अपने निजी अनुभव से भी मैंनें यह जाना है कि तमाम स्थानीय बोलीभाषी बच्चे जब अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में पढ़ते हैं तो गणित और विज्ञान जैसे विषयों में विषयगत समझ बढ़ाने की बजाए उनका पूरा ध्यान भाषा को समझनें में ही लगा रहता है।

ऐसे में जब शिक्षक एक–एक अध्याय पढ़ाते चले जाते हैं तो विद्यार्थी के पास उन्हें समझने का वक्त ही नहीं रहता। ऐसे में बहुत से बच्चे रटना शुरू कर देते हैं क्योंकि उनके पास परीक्षा पास करने का और कोई विकल्प ही नहीं बचता है। इससे भी मुश्किल बात ये है कि माध्यम बदलने की वजह से न तो शिक्षक के पास इतना समय होता है कि वह विद्यार्थी को भाषागत अर्थ को बता कर विषय समझाए और न ही माता पिता के लिए एक अजनबी भाषा को समझ कर उसे अपने बच्चों को समझाने की ताकत।

यह भी वैज्ञानिक रूप से सिद्ध है कि जो बच्चा अपनी मातृभाषा में अच्छी पकड़ रखता है वह अन्य विदेशी भाषाएं भी बहुत तेजी से सीखता है। अतः इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषाओं पर पुनः विचार किया जाए क्योंकि यह न सिर्फ मूलभूत विषयों को तेजी से सीखने में मदद करती है वरन अन्य भाषाएं सीखने में भी मददगार साबित होती है। अतः इस संबंध में नीतिगत फैसले लेने की जरूरत है क्योंकि मातृभाषा ही बेहतर भविष्य प्रदान कर सकती है।

❋ ❋ ❋

भूलकर वसुधा का शृंगार,
सेज पर सोया जब संसार,
दीप कुछ कहे बिना ही जला–
रातभर तम पी–पीकर पला–
दीप को देख, भर गए नयन
उसी क्षण–
बुझा दिया जब दीप, किसी ने कहा
दीप की तरह जलो, तम हरो
सदा इंसान।

– रमानाथ अवस्थी

पक्षियों का संसार

श्रीमती अनुराधा भाटी
शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

परिचय : पक्षियों का संसार विविध रंगों से भरा है। पक्षी हमारी पृथ्वी पर सुन्दर,कोमल व उड़ने की अद्भुत योग्यता रखने वाले जीव हैं। पक्षी आसमान में जब पंख पसार कर उड़ते हैं तब बहुत ही मनोहारी लगते हैं। प्रातः अपने घोसलों से उड़कर जाना तथा शाम को एकत्र होना इनका नियमित आचरण है। पक्षी आसमान में विचरण करते हुए जब अपनी स्वर लहरियां प्रकट करते हैं तब देख सभी का हृदय रोमांचित हो उठता है। पक्षी जल–थल तथा नभ तीनों में विचरण कर सकते हैं। कुछ पक्षी चटकीले रंग के होते हैं। हमारे राष्ट्रीय पक्षी मोर का रंग भी बहुत आर्कषक है। हमारे साहित्य में भी पक्षियों का वर्णन देखने को मिलता है जैसे जल दमयंती कथा में हंस द्वारा दमयंती के रूप का वर्णन व कालिदास की रचनाओं में भी उनका एक अलग ही स्थान है।

पक्षियों की उत्पत्ति : जीवाश्म् और जैविक साक्ष्य के आधार पर, अधिकांश पक्षी वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि सभी पक्षी त्रिपदीय डायनासोर का ही एक विशेष उपसमूह हैं। पक्षी अंततः पृथ्वी पर रहने वाले सभी अन्य कशेरूकी जानवरों से संबंधित हैं। लेकिन आप यह जानकर हैरान रह सकते हैं कि कशेरूकी के परिवार के साथ जो आधुनिक पक्षी के सबसे निकट सम्बंधी हैं, वह मगरमच्छ हैं, जो उत्तरार्द्ध ट्रायसिक काल के दौरान आर्नोसौर सरीसृप की आबादी से डायनासोर की तरह विकसित हुए हैं।

पक्षियों की विशेषताएँ : कुछ पक्षी आकाश में अत्यधिक ऊँचाई पर उड़ते हैं तथा कुछ पक्षी पृथ्वी की सतह से दो–चार फीट की ऊँचाई तक ही उड़ पाते हैं। जिस प्रकार संसार में अनेक प्रकार की विभिन्नताएँ पाई जाती हैं, उसी प्रकार पक्षी जगत् में भी अनेक प्रकार की विविधता पाई जाती हैं। पक्षियों में दो विशेषताए समान रूप से पाई जाती हैं। (अ) सभी पक्षी उड़ते हैं। (ब) सभी मादा पक्षी अंडें देतीं है। कुछ पक्षियों की आवाज बहुत मधुर तथा कर्ण, प्रिय होती हैं, जैसे कोयल, तोता, पपीहा, मैना की आवाज के सभी कायल हो जाते हैं। जबकि कौए की कर्कश आवाज को सभी नापसंद करते हैं।

पक्षियों का रहवासः सभी पक्षी प्रकृति से सीधे जुड़े होते हैं। जहाँ कहीं हरियाली देखी अपना बसेरा डाल देते हैं। ये जंगलों, झाड़ियों तथा पेड़ों पर घोंसला बनाकर रहते हैं। कुछ पक्षी तो घोंसला बनानें में बहुत निपुण भी होते हैं। जैसे– बया पक्षी का घोंसला, जिसकी तुलना नही की जा सकती। कुछ पक्षी घोंसला न बनाकर पेड़ की कोटर में आशियाना बना लेते है, तथा कठ फोड़वा पक्षी काठ में छिद्र बना लेता है। मोर जैसे कुछ बड़े पक्षी घोंसला न बनाकर झाड़ियों में शरण लेते हैं। कुछ पक्षी दुर्गम स्थानों में निवास करते है। पेंग्विन ऐसा ही एक पक्षी है। यह ध्रुवीय प्रदेशों में अत्यन्त ठण्डें स्थानों में भी जीवित रहता है। कुछ पक्षी जल में निवास करते है। जैसे सारस, बगुला, हंस, जल–मुर्गी आदि ऐसे ही पक्षी हैं, ये पानी की मछलियों तथा अन्य छोटे–मोटे जीवों से अपना पेट भरते हैं।

पक्षियों का भोजनः पक्षी विविध प्रकार के भोजन करते है जिनमें पराग, फल, पौधे, बीज, सड़ा हुआ मांस और विभिन्न छोटे जीव शामिल हैं। चूंकि पक्षियों के दांत नहीं होते, इसलिए वे भोजन को निगल जाते हैं। उनका पाचन तंत्र बहुत मजबूत होता है, जो बिना चबाएं खाने वाले खाद्य पदार्थो की प्रकिया के लिए अनुकूलित है। कुछ पक्षी मांसाहारी भोजन करते हैं जैसे–बाज कौआ, बगुला आदि जो मांस मछली, कीड़े–मकोड़े को खाकर अपना पेट भरते हैं। दूसरे कुछ पक्षी शाकाहारी होते है जैसे कबूतर, तोता, मोर आदि। ये दाना तथा फल–फलियाँ, सब्जियाँ खाकर अपना पेट भरते हैं।

पालतू पक्षीः सभी पक्षी हमेशा आजाद पंछी की तरह रहना चाहते हैं। लेकिन कुछ पक्षियों को मनुष्य ने

पालतू बनाकर रखा है। जैसे–कबूतर, तोता, मैना, रंग बिरंगी चिड़ियाँ, बत्तख आदि। तोता हमारी आवाज की नकल के लिए जाना जाता है तो सफेद कबूतर को शान्ति का प्रतीक तथा– संदेशवाहक के रूप में जाना जाता है। मुर्गा–मुर्गी, बत्तख तथा कुछ रंग–बिरंगे पक्षियों को लोग उनके चटख रंग के कारण पालते हैं, क्योंकि यह घर की शोभा बढ़ा देते हैं तथा पालन–पोषण व्यवसायिक (अंडा,मांस) दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। गरूड़ या बाज पक्षियों का राजा कहलाता है। धार्मिक साहित्य तथा पुराणों में इनका वर्णन मिलता है। ये बड़े शक्तिशाली होते हैं। आसमान में बहुत ऊँचाई से ही अपने शिकार को देख बड़ी तेजी से नीचे आकर उसे झपट लेते हैं।

पक्षियों का महत्वः पक्षियों का बहुत बड़ा संसार है। ये शीतऋतु में समूहों में लम्बी उड़ान भरते हुए दूरस्थ अपेक्षाकृत गर्म स्थलों में प्रवास करते हैं। इन्हें प्रवासी पक्षी कहा जाता हैं। भारत में हर वर्ष साईबेरिया से प्रवासी पक्षियों का आगमन होता है। इनके क्रिया–कलापों से धरती पर पर्यावरण संतुलन बना रहता है। अधिकांश पक्षी उड़ सकते हैं, लेकिन पेग्विन जैसे पक्षी उड़ नहीं सकते हैं, जो उन्हें लगभग सभी अन्य हड्डीवाले वर्गों से अलग करते हैं। उड़ान भरना अधिकांश पक्षी प्रजातियों का मूल–क्रिया कलाप है। प्रजनन के लिए नर तथा मादा जोड़े बनाते हैं तथा कुछ आजीवन साथ रहते हैं।

पक्षी और पर्यावरणः पक्षी हमारे पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं परन्तु अवैध शिकार एवं वन क्षेत्र घटने पर कुछ पक्षियों पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। इनमें से कुछ दुलर्भ होते जा रहे हैं। चिड़िया (गौरैया) जैसा पक्षी वर्तमान समय में संकटग्रस्त है। ग्रीष्म ऋतु में पानी के अभाव से भी पक्षी मर जाते हैं। हालांकि अब कई संस्थाएं, विशेषकर राजस्थान में, पक्षियों के लिए पानी के परिंडे लगाने का सराहनीय कार्य कर रहीं है। वर्तमान में सरकार ने इनके सुरक्षित निवास के लिए वन्यजीव अधिनियम एवं अभ्यारण्य बनाए हैं। हम सबको भी दुर्लभ पक्षियों को बचाने के लिये उचित प्रयास करना होगा। पक्षी संरक्षण में जन– भागीदारी होना अति आवश्यक है। इनके संरक्षण हमें भरसक प्रयास करते रहना चाहिए तथा इनकी स्वच्छंदता को बने रहने देना चाहिए।

जल में रहने वाले पक्षी (स्रोत–गूगल)

❁❁❁

सुबह नहीं अपनी रही, रही न अपनी शाम,
ओवरटाइम जो मिला, किया काम, बस काम।।

सुबह सुबह माथा गरम, कंधे पर वैताल,
लहर उठाए किस तरह, उम्मीदों का ताल।।

भारत में व्यावसायिक मधुमक्खी पालन– चुनौतियां एवं रोजगार सृजन हेतु संभावनाएं

श्री यशपाल सिंह बिष्ट
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही छत्तों से शहत एकत्रित कर, उससे आय अर्जित करने की परम्परा रही है, हालांकि 18वीं सदी के मध्य तक यह एक पूरक व्यवसाय था। मधुमक्खियों के घरेलूकरण में प्रथम सफल प्रयास का श्रेय यूरोपीय दार्शनिक स्वमेरडेम तथा रेऊमुर को जाता है। भारतवर्ष में सर्वप्रथम भारतीय मौनों (एपिस सिराना इंडिका) के सफल घरेलूकरण का श्रेय सन् 1930 में श्री. आर.एन. मट्टो को है। भारतीय परिवेश में पाश्चात्य मौनों/यूरोपियन मौनों (एपिस मेलिफेरा) से मधुमक्खी पालन का आरंभ सन् 1960 के दशक में डॉ. ए.एस. अटवाल तथा उनके सहयोगियों ने पंजाब में किया। भारतीय कृषकों, जनसमुदायों तथा मधुमक्खीपालकों के लिये पाश्चात्य मौन अतिरिक्त आय अर्जित करने हेतु एक वरदान सिद्ध हुआ। बस यही वह दौर था जहां से लोगों ने मधुमक्खी पालन को व्यवसायिक रूप से अपनाकर अपनी आय का स्रोत बना लिया तथा समय व्यतीत होने के साथ –साथ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में शहद काफी लोकप्रिय हो गया। अर्थशास्त्र के मांग एवं आपूर्ति सिद्धात के अनुसार बढ़ी हुई मांग के परिणामस्वरूप शहद के मूल्य में भी वृद्धि हुई।

मधुमक्खी पालन के लाभः

मधुमक्खी पालन से शहद ही नहीं अपितु मोम, रॉयल जैली, परागकण, इत्यादि भी प्राप्त होते हैं। मधुमक्खी पालन से होने वाले लाभों की सूची कुछ इस प्रकार हैः

- कृषकों की आय में वृद्धि
- कृषि–वानिकी में परागण में बढ़ोत्तरी
- शहद, रॉयल जैली, मोम, पर–पालिस एवं पराग उत्पादन
- मधुमक्खी पालन के उत्पादों में अनेकों औषधीय गुण विद्यमान रहते हैं। शहद का नियमित सेवन तपेदिक, खून की कमी, ब्लड प्रैशर, कब्ज इत्यादि बीमारियों से मुक्ति दिलाता है और रॉयल जैली का सेवन ट्यूमर से बचाव के अतिरिक्त स्मरण शक्ति शक्तिवर्धक एवं आयु–वर्धन में सहायक है।

मधुमक्खी पालन कैसे शुरू करें ?

इस व्यवसाय को शुरू करने से पूर्व विशेष कौशल विकास की आवश्यकता होती है क्योंकि इस कार्य का स्वभाव तकनीकी ज्ञान तथा अनुभव के अंतः परस्पर क्रिया से संबंधित है।

प्रशिक्षणः विभिन्न कृषि/वानिकी/उद्यान से संबंधित संस्थानों/विश्वविद्यालयों द्वारा देशभर में आवेदक की शिक्षा अनुसार सर्टिफिकेट/डिप्लोमा/डिग्री कोर्सों का संचालन किया जा रहा है। प्रशिक्षु इन पाठयक्रमों से शैक्षिक एवं व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यदि आवेदक के पास कोई भी शैक्षिक योग्यता नहीं है तो उसके लिए आदतन कोर्स (Hobby Course) का प्रावधान है।

मौन प्रजातियों का ज्ञानः वर्तमान में भारत में पायी जाने वाले मौन वंशों का विवरण निम्न है। इनमें प्रथम दो मौन घरेलु मौन की प्रजाति हैंः

भारतीय मौन (एपिस सिराना इंडिका) : यह सदियों से भारत वर्ष में पायी जाने वाली घरेलू प्रजाति है जो विषम परिस्थितियों जैसे अधिक ठंड एवं गर्मी में भी अपने कार्य का निष्पादन सफलता पूर्वक करती है। वर्ष 1980 तक इस प्रजाति का पालन सफलता पूर्वक पहाडों से लेकर रेगिस्तान तक सफलतापूर्वक किया गया। 1980 के बाद सैक ब्रूड नामक बीमारी के कारण पूरे भारतवर्ष में

इस प्रजाति के लगभग 3 लाख मौनवंश नष्ट हो गये। इस प्रजाति के कम उत्पादन के साथ ही गुस्सैल एवं घरछुट की अधिक प्रवृत्ति के कारण मधुमक्खीपालकों का ध्यान इससे हट गया जिससे पिछले तीन दशकों में इस प्रजाति की लोकप्रियता में काफी कमी आयी है।

पाश्चात्य/इटैलियन मौन (एपिस मैलीफेरा) : यह एक विदेशी मौन प्रजाति है जो 1962 में यूरोप से मंगायी गयी थी। लगभग 1980 के दशक में सफल प्रयासों के बाद मौनपालकों को वितरित की गयी। तत्पश्चात बहुत कम समय में इसकी लोकप्रियता देखी गयी। यह प्रजाति जंगली रूप में नहीं पायी जाती। इसकी शह उत्पादन क्षमता भारतीय मौन से ज्यादा होने के कारण यह प्रजाति मौनपालकों को लुभा रही है। इसमें घरछुट/बकछुट की समस्या कम होती है। एक वर्ष में एक मौनवंश से लगभग 50 कि.ग्रा. तक शहद प्राप्त किया जा सकता है।

सारंग (एपिस डॉरसीटा) : यह प्रजाति बड़े आकार की एवं गुस्सैल स्वभाव की होती है, इसका पालन अभी तक संभव नहीं हो पाया है। यह एक जंगली प्रजाति है जो अपना छत्ता जंगलो में, पेडों या पहाडों की गुफाओं में बनाती है।

छोटी मौन (एपिस फ्लोरिया) : यह आकार में बहुत छोटी होती है। यह भी एक जंगली प्रजाति है जो पाली नही जा सकती, यह अपना छत्ता झाड़ियों में बनाती है। इनसे बहुत कम शहद प्राप्त होता है। इनके शहद को सफाई से निकालकर उसका प्रयोग औषधि के रूप में किया जाता रहा है।

मधुमक्खी पालन हेतु स्थान का चयन : इस व्यवसाय के सफल क्रियान्वयन हेतु चयनित स्थान के 3 किमी. की परिधि में ऐसी वनस्पतियों एवं वृक्षों का होना आवश्यक है जिनसे मधुमक्खियां ऋतु अनुसार पराग–मकरंद प्राप्त कर सकें जैसेः सूरजमुखी के फूल, सरसों की फसल, यूकेलिप्टस, लीची, नीबू, कीनू, पपीता, मौसमी, संतरा, अमरूद इत्यादि के वृक्ष।

- **मधुमक्खी पालन हेतु आवश्यक उपकरणः** इस व्यवसाय को लघु स्तर पर आरम्भ करने हेतु निम्न उपकरणों की आवश्यकता होती हैः

- मधुमक्खी के बॉक्स (लैंगस्ट्रोथ बॉक्स)
- धुमक
- सुरक्षा जाली (बी–वैल)
- ब्रश
- स्टील का चाकू
- मौन निर्वासक (क्वीन गेट)
- दास्ताने
- फीडर
- मधु निष्कर्षक यंत्र

लघु व्यवसाय आरंभ करने में लागत तथा अनुमानित आयः

एक सर्वेक्षण के अनुसार 80 मधुमक्खियों की कॉलोनी वाली इकाई की शुरूआत करने में 3,50,000/– रूपया तक का खर्च आ सकता है, जिसमें मधुमक्खी के छत्तों (कॉलोनियों), लकडी के बाक्सों, मोम–शीटों तथा अन्य आवश्यक उपकरणों के क्रय हेतु व्यय सम्मिलित है। शहद की वर्तमान खुदरा दर तथा प्रति वंश शहद उत्पादन अनुमान से 80 बक्सों से प्रथम वर्ष में 8 से 9 लाख रूपये तक आमदनी होने के आसार लगाये जा सकते हैं।

अतः उद्यमशीलता विकास तथा कृषक को एक अतिरिक्त आय अर्जित करने के रूप में मधुमक्खी पालन एक महत्वपूर्ण घटक सिद्ध हो सकता है।

❁ ❁ ❁

भाषा और राष्ट्रीय एकता

श्री एम.विनय चन्द्रन
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

भारत एक बहुभाषी देश है। लगभग 29 भाषाओं का चलन हमारे देश में है। सभी राज्यों की अपनी–अपनी भाषाओं के अलावा वेशभूषा, रहन–सहन, खान–पान, उत्सव एवं त्यौहार भी अलग हैं, फिर भी हम एक हैं। केवल भाषा ही नहीं बल्कि भाषाओं के साथ–साथ बहुत सारी बोलियाँ भी बोली जाती है, जैसे कोंकणी, छत्तीसगढ़ी, बुन्देली आदि। जैसे हर व्यक्ति के स्वभाव में अंतर है, ऐसे ही हर राज्य की भाषा भी अलग–अलग होती है।

भाषा न केवल अपने मत को व्यक्त करने का माध्यम है, बल्कि यह हर एक के संस्कार से भी जुडी हुई है। अलग–अलग भाषा, वेशभूषा और संस्कृति होते हुए भी हम सभी देशवासियों को एक सूत्र में बाँधे रखने के लिये जनमानस की भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने की आवश्यकता महसूस हुई। यह आवश्यकता भारत आजाद हुआ, उससे पहले उत्पन्न हुई थी। देश के सर्वाधिक लोग हिन्दी भाषी होने की वजह से, हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया। हिन्दी केवल राजभाषा ही नहीं बल्कि एक उदात्त संस्कृति को भी दर्शाती है।

17 फरवरी 1987 को संविधान के 58वाँ संशोधन आने तक संसद और विधानसभा के लगभग समस्त बिल एवं कानूनों के विज्ञापन अंग्रेजी में ही प्रकाशित होते थे। पूरे भारत में उपयोग में आने वाली एक राजभाषा को संकल्प भी इसी आशय के पूर्तिकरण के लिये था। नियम निर्माण, कानून व्यवस्था, पुलिस और सरकार के सभी विभागों से संबंधित है राजभाषा। अंग्रेजी का उपयोग, सरकार के विभिन्न विभागों के सेवाओं से सामान्य जनमानस को दूर रखता था। जनमानस में राष्ट्र के प्रति प्रेम और आदर पैदा करने तथा उनके स्वयं की भाषा में राज करने की आवश्यकता को गांधीजी ने पहले ही महसूस कर लिया था।

लोकसभा के 20 सदस्यों और राज्य सभा के 10 सदस्यों की एक समिति को प्रथम राजभाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिये और उनके विषय को राष्ट्रपति के समक्ष रखने के लिये संविधान के अनुच्छेद 344 के खण्ड – (4 के उपबन्धों के अनुसार नियुक्ति की गई थी। उन्होंने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को 8 फरवरी 1959 को पेश की। उक्त रिपोर्ट के मुख्य अंश इस प्रकार हैं :–

(क) शब्दावली तैयार करने में मुख्य लक्ष्य उसकी स्पष्टता, यथार्थता और सरलता होनी चाहिये।

(ख) सभी भारतीय भाषाओं के लिये शब्दावली का विकास करते समय लक्ष्य यह होना चाहिये कि उसमें जहाँ तक हो सके अधिकतम एकरूपता हो।

(ग) हिन्दी और अन्य भाषाओं की शब्दावली के विकास के लिये जो प्रयत्न केन्द्र और राज्यों में हो रहे है उनमें सामन्वय स्थापित करने के लिये समुचित प्रबन्ध किये जाने चाहिये। इसके अतिरिक्त समिति का यह मत है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सब भारतीय भाषाओं में जहाँ तक हो सके एकरूपता होनी चाहिये और शब्दावली लगभग अंग्रेजी या अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली जैसी होनी चाहिये।

विभिन्न संस्थाओं द्वारा किये गये काम में समन्वय स्थापित करने और उसकी देखरेख के लिये और सब भारतीय भाषाओं को प्रयोग में लाने की दृष्टि से एक प्रमाणिक शब्दकोश निकालने के लिये ऐसा स्थाई आयोग कायम किया जाए जिसके सदस्य मुख्यतः विज्ञान और प्रौद्योगिकीविद् हों।

शिक्षा मंत्रालय निम्नलिखित विषय में कार्रवाई करें:–

(क) अब तक किये गये काम पर पुनर्विचार और समिति द्वारा स्वीकृत सामान्य सिद्धान्तों के अनुकूल

शब्दावली का विकास विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में वे शब्द, जिनका प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में होता है, कम से कम परिवर्तन के साथ अपना लिया जाए अर्थात मूलशब्द वो होना चाहिये जो कि आजकल अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली में काम आते हैं।

(ख) शब्दावली तैयार करने के काम के समन्वय स्थापित करने के लिये प्रबन्ध करने के विषय में सुझाव देना और

(ग) विज्ञान और तकनीकी शब्दावली के विकास के लिये समिति के सुझाव के अनुसार स्थाई आयोग का निर्माण।

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय की समस्त प्रक्रिया एवं निर्णय प्रस्तुत और पास करवाने की भाषा का माध्यम अंग्रेजी था और हर संवैधानिक आदेशों का प्रकाशन भी अंग्रेजी भाषा में होता था। यह स्थिति 17 फरवरी 1987 को संविधान के 58वाँ संशोधन पास होने तक थी। तब तक संविधान को हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशन नहीं हुआ था। जनता और प्रशासन को बीच संपर्क कायक्रम करने के लिये भी हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करना अनिवार्य था। अंग्रेजो से भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिये भी, गांधीजी को समस्त भारत प्रान्त, खासकर दक्षिण प्रान्त में हिन्दी के प्रचार–प्रसार की आवश्यकता महसूस हुई। हिन्दी के साथ–साथ अन्य सभी प्रादेशिक भाषाओं के महत्व को उन्होंने अपने कार्यक्रमों में शामिल किया। लोग केवल समाज में अग्रणी स्थान पाने के लिये अपनी प्रान्तीय भाषा की उपेक्षा करते हैं, यह गांधीजी का मानना था। इन सबसे निजात पाने के लिये दक्षिण भारतीय हिन्दी प्रचार सभा को 1923 में स्थापित किया गया था।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ''सत्यार्थ प्रकाश'' की रचना हिन्दी में ही की थी। सन 1873 को कलकत्ता में चन्द्रसेन से मुलाकात के बाद ही स्वामी जी ने जन सामान्य की भाषा के रूप में संस्कृत के बदले हिन्दी का उपयोग करने की शुरूआत की। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज की हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में बहुत ही अहम भूमिका है।

स्वामी दयानंद सरस्वती के बाद उनके हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के कार्य को आगे बढ़ाने का दायित्व गाँधीजी ने अपने कंधे पर ले लिया। स्वामी जी ने हिन्दी को धार्मिक कार्य के लिये उपयोग किया, तो गाँधीजी ने इस कार्य को देश के स्वतंत्रता संग्राम में लोगों को प्रेरित करने के लिये उपयोग किया। हाल ही में भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्रीमान रामनाथ कोविन्द जी ने केरल प्रान्त के उच्च न्यायालय के हीरक जयन्ती के अवसर पर अपने भाषण में कहा था कि भारत की न्याय प्रणाली के समस्त निर्णयों को अंग्रेजी के साथ–साथ आवश्यकता के अनुसार हिन्दी अथवा स्थानीय भाषाओं में भी अनुवाद कर देना चाहिये। वास्तव में उन्होनें यह सामान्य जनमानस की बात कही। यदि न्यायालयों की भाषा सरल हो जाये और हर निर्णय एवं आदेश स्थानीय भाषा में मिलने लगे तो यह जनसामान्य के लिये किसी आशीर्वाद से कम नहीं होगा।

भारतीय भाषाओं का संरक्षण एवं संवर्धन करना, राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रखने के लिए अति आवश्यक है। सशक्त एवं समृद्ध भारत के निर्माण के लिये हमें भी भाषाओं के सशक्तिकरण के लिये कृत संकल्प होना चाहिये।

❋ ❋ ❋

थकने की क्या बात हो, जीना हमें जहान,

कंधे पर सामान है, पाँव पाँव प्रस्थान।।

पुस्तक समीक्षा

श्री ए.एस. चौहान
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

The Great Derangement: Climate Change and the Unthinkable : अमिताव घोष

पिछली शताब्दी के अंतिम दो दशकों मे वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को उजागर किया कि पृथ्वी का तापमान असामान्य रूप से बढ़ रहा है तथा इसके कारण पृथ्वी पर अनेक परिवर्तन हो सकते हैं जिनमे प्रमुख होगा –जलवायु परिवर्तन। शीघ्र ही इसके परिणाम भी दिखाई दिए जब विश्व के अनेक भागों मे सामान्य से अधिक गर्मी पड़ी तथा अनेक स्थानों पर बाढ़ व अकाल की स्थिति बन गई। इस वैश्विक समस्या का सामना करने के लिए संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू.एन.ई.पी.) व विश्व मौसम विज्ञान संगठन (डब्लू.एम.ओ.) ने 1988 में जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल (आई.पी.सी.सी.) का गठन जलवायु परिवर्तन के आकलन के लिए किया । इस संगठन ने अनेक रिपोर्टें प्रकाशित की जिनमें बताया गया कि किस प्रकार विश्व के अनेक देशों में जलवायु परिवर्तन के कारण फसलों की बर्बादी, बाढ़, सूखे व अकाल के कारण भारी आर्थिक नुकसान हो रहा है।

इस परिदृश्य पर अमिताव घोष ने 2016 में The Great Derangement : Climate Change and the Unthinkable नामक पुस्तक लिखी। उनकी यह पुस्तक विस्तार से इस समस्या पर साहित्यिक, ऐतिहासिक व राजनैतिक विचारों के आलोक मे विचार करती है कि क्यों हम मौसम की अनियमितताओं के प्रति उदासीन रहे या फिर उन्हें अनदेखा किया। आज जब हम जलवायु परिवर्तन के विषय में विचार करते हैं तो हम विश्व को एक उदास करने वाले भविष्य की ओर जाते देखते हैं। जलवायु परिवर्तन कोई यकायक होने वाली घटना नहीं है। यदि कोई अप्रत्याशित मौसम हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित करता भी है तो हम उसे अनदेखा कर देते हैं। या फिर उसे प्रकृति का सहज स्वाभाव मान लेते हैं। घोष इसे हमारा, आज की पीढ़ी का, पागलपन मानते हैं, जैसा कि उनकी पुस्तक का शीर्षक है।

पुस्तक के पहले भाग में घोष आधुनिक साहित्य का उल्लेख करते हैं जहां मनुष्य के आंतरिक द्वंदों का उल्लेख है, जहाँ उसके जीवन की विद्रूपताएं हैं, अंतर्मन के प्रलाप हैं – इसे हम यथार्थवाद कहते हैं। यह सब एक मानव जीवन में घटता है –किन्तु अपने परिवेश से अछूता, मानों यह परिवेश अनंत से यूं ही है और ऐसा ही रहने वाला है। इस साहित्य में बाह्य परिवेश (भौतिक वातावरण) का कोई विशेष स्थान नहीं है और न ही उस कथावस्तु पर उसका कोई प्रभाव ! साहित्य जगत में कम ही ऐसी रचनाएं हैं जिनके कथानकों में जलवायु परिवर्तन को हमारे जीवन से जोड़ कर प्रस्तुत किया गया हो। वैज्ञानिक रोमांच की काल्पनिक कथाओं में हम विपरीत हालात के जलवायु में नायक को लड़ता पाते हैं जो उस जलवायु पर विजय प्राप्त कर लेता है। एक साहित्यिक कृति जो सर्वाधिक उद्धृत की जाती है वह है जॉन स्टेनबेक रचित द ग्रेप्स ऑफ़ रैथ (1939)। यह पुस्तक 1930 के दशक में अमेरिका के बड़े भूभाग में पड़े अकाल के कारण हुए विशाल धूल के तूफानों की पृष्ठभूमि में लिखी गई है। तब इस असामान्य मौसम के कारण भारी आर्थिक हानि हुई व बहुत से लोगों को विस्थापित होना पड़ा था।

अपनी पुस्तक के दूसरे अध्याय में घोष एशिया के भौगोलिक, राजनैतिक व पर्यावरणीय इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। अध्याय में एशिया के पर्यावरणीय परिदृश्य को विस्तृत आंकड़ों के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। एशिया का एक बड़ा भूभाग एक लम्बे समय तक ब्रिटिश उपनिवेश का हिस्सा रहा। औद्योगिक उन्नति के समय जब पूंजीवादी व्यवस्था बढ़ रही थी तब उपनिवेश होने के कारण यह भाग तकनीकी उन्नति से उपेक्षित ही रहा। इस औपनिवेशिक नीति के कारण विश्व में विकास में

असमानता पैदा हो गई। उपनिवेशों के कच्चे माल को यूरोप में निर्यात किया गया। पर्यावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड की अधिकता व इस काल में हुई औद्योगिक विकास की बीच सह–संबंध देखा जा सकता है। घोष मध्य एशिया पर विशेष ध्यान देते हैं–क्योंकि मौसम परिवर्तन का इस हिस्से पर विशेष प्रभाव पड़ने वाला है। इस भू भाग में भारी घनत्व के साथ बहुत से लोग रहते हैं। लगभग 5 करोड़ बांग्लादेशी व 7.5 करोडे भारतीय लोगों को समुद्र तल पर जल स्तर बढ़ने के कारण विस्थापित होना होगा। अभी भारत व चीन –इस भाग के दो बड़े देश– का कार्बन उत्सर्जन जीवाश्म ईंधन के उपयोग के कारण तेजी से बढ़ रहा है। यद्यपि प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन में अभी पश्चिमी देश आगे हैं किन्तु चीन का कुल कार्बन उत्सर्जन अमेरिका से अधिक है। यह देश दलील देते हैं की दीर्घ समय तक यह भाग उपनिवेश का हिस्सा रहा जिसके कारण उसे विकास करने का उचित अवसर नहीं मिला जबकि इस भाग के संसाधनों से पश्चिम ने बहुत उन्नति की। उपनिवेश समाप्त होने के बाद उन्हें यह अवसर मिलना चाहिए। उनका यह भी कहना है की उस काल में उनका कार्बन उत्सर्जन नगण्य था।

तीसरे अध्याय में राजनीति पर विचार करते हुए घोष लिखते हैं कि स्वतंत्रता का विचार, जो कि आधुनिकता का प्रमुख पहलू है, और आज की राजनीति ही नहीं मानविकी,कला व साहित्य में भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। पुनर्जागरण के बाद ही दार्शनिक इस बात के लिए चिंतित थे कि मनुष्य कैसे अन्याय व शोषण से मुक्त हो जो की मानव व मानवीय सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान हैं। इस स्वतंत्रता की चाह में प्राकृतिक विषमताओं से मुक्ति की इच्छा भी थी और यहीं से प्रकृति व सभ्यता का भेद भी आरम्भ हुआ। विडंबना यह थी की जीवाश्म ईंधन के उपयोग में अग्रसर समाज ने इसके मौसम पर पड़ने वाले प्रभावों को अनदेखा कर दिया। उन्होंने प्रकृति की आवाज को अनसुना कर दिया और जो हम आज भी कर रहे हैं। हमारा स्वयं को आधुनिक मानना एक खतरनाक भ्रम ही है। पश्चिम में भी जब मानव अधिकारों को प्राथमिकता दी गयी तब वह व्यक्तिगत अधिकारों को रेखांकित कराती है–यद्यपि यह भी महत्वपूर्ण है– उसमें मनुष्य के सामूहिक अधिकारों व कर्तव्यों का कोई उल्लेख नहीं है। व्यक्तिगत तौर पर मौसम परिवर्तन से कोई मुकाबला नहीं कर सकता। मौसम परिवर्तन हमारी इस व्यक्तिगत स्वतंत्रता को एक कठिन चुनौती है।

घोष यह कह कर समापन करते हैं कि राजनीति भी साहित्य की तरह व्यक्तिगत नैतिक पहचान तक सीमित रह गई है। यह एक सामूहिक प्रयास का आह्वान करती है। दुर्भाग्य से अब भी हमारा विश्वास कि तकनीकी द्वारा हम इस समस्या से मुक्त हो जाएंगे – जिस तकनीकी के कारण हम इस परिस्थिति में है ! पोप का भी यही मानना है कि हम अपनी राह से भटक चुके हैं और तकनीकी के सहारे हम इस समस्या से छुटकारा नहीं पा सकते। बहुत पहले, 1930 के दशक में, मार्टिन हेड्डेगार ने कहा था। "यह मानना कि तकनीकी हमारा यंत्र है और हमने इसके द्वारा जो एक जटिल तंत्र खड़ा कर लिया है –वह अब हमें नियंत्रित करता है।"

❁ ❁ ❁

दिल में है दरियादिली, पर खाली है जेब,
बिन घुँघरू कैसे बजे, खुशियों की पाजेब।।

माँ

जाती हुई धूप संध्या की
सेंक रही है माँ
अपना अप्रासंगिक होना
देख रही है माँ

भरा हुआ घर है
नाती पोतों से, बच्चों से
अन बोला बहुओं के बोले
बंद खिड़कियों से
दिन भर पकी उम्र के घुटने
टेक रही है माँ

पूनी सरसों नहीं रही
अब खेतों में मन के
पिता नहीं हैं अब नस नस
क्या कंगन सी खनके
रस्ता थकी हुई यादों का
छेंक रही है माँ

बुझी बुझी आँखों ने
पर्वत से दिन काटे हैं
कपड़े नहीं, अलगनी पर
फैले सन्नाटे हैं
इधर उधर उड़ती सी नजरें
फेंक रही है माँ

– यश मालवीय

लालित्य

सतत विकास: समय की मांग

श्री अखिल कुमार
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

एक जंगल था मुस्कराता सा
कल–कल बहती नदियां थी
चहकती सी चिड़ियां,
खिलते से फूल थे
अठखेलियां करते वन्य जीव,
घोर जंगल तक जाती पगडंडी थी
एक झरना था प्यारा सा
पर आज वहा सन्नाटा है
कहीं बांध कहीं सीमेंट की दीवार है
कहीं मानव निर्मित आपदाएं हैं
तो कहीं पानी को तरसती बस्ती है
कहीं गाड़ियों का धुआं तो कहीं साफ हवा को तरसते मनुष्य हैं
एक जंगल था मुस्कराता सा
सोचा मन में क्या यही हमारा भविष्य है
कागजों तक सीमित जंगल का मनोरम दृश्य है।
आज विकास की होड़ में हम ये किस तरफ चल दिए
शायद विनाश की ओर चल दिए
क्या कश्मीर, बिहार, चेन्नई, केरल या चंपारण
हमारे समक्ष हैं ऐसे कितने ही उदाहरण
समय रहते न बदल पाये ये तस्वीर
तब आने वालों की बदली होगी तकदीर
ना वो मुस्कुराता जंगल होगा, ना वन्य जीव
ना झरना होगा,
बस हर तरफ शोर में खामोशी होगी
शुद्ध जल, शुद्ध हवा को तरसता मनुष्य होगा
सुनाने को बस मोगली की कहानी होगी
न कल–कल बहता नदी का पानी होगा
एक जंगल था मुस्कराता सा।

❁❁❁

पृथ्वी पर प्रदूषण का सफर

श्री शिव सत्या प्रसाद
वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद

पृथ्वी है हमारी,
जहाँ सभी के लिए है घर,
आओ मेरे साथ करें पृथ्वी का सफर,
बेदाग, स्वच्छ, सुंदर,
पृथ्वी पर आपका स्वागत है!
हमारी यात्रा सुखद थी,
औद्योगिक क्रांति से पूर्व,
प्रौद्योगिकी की बड़ी प्रगति,
जिसने जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया
दुनिया के 2300 से अधिक
कोयला बिजली संयंत्र,
एक अरब से अधिक गाड़ियां
दुनिया में नवाचार की गति को
कई गुना बढ़ा दिया,
पर हमारी सांस लेने वाली
वायु को प्रभावित किया।
CO_2 उत्सर्जन 150 गुना बढ़ाए
शहरों पर मोटी भूरे रंग की धुंध घिरी हुई है,
एक धुंध भरे शहर में सांस लेना
3 पैक सिगरेट के धूम्रपान के बराबर है।
वायु प्रदूषण की एक कैंसरकारक श्रेणी है,
जिसमें सांस लेते हैं वह मार रही है,
कार्बन मोनोऑक्साइड,
अपूर्ण दहन से बने प्रदूषक
हमारी यात्रा यहां खत्म नहीं होती है,
यह नवाचार,
मानव इतिहास को संतुलित रख पाएगा?
सवाल यह है
कि क्या पृथ्वी अभी भी सुंदर रह पाएगी?
दुर्भाग्यपूर्ण है
हमारी धरती बदतर की तरफ जा रही है
उम्मीद है,
गैर प्रदूषण नवीकरणीय संसाधनों से
वायु ऊर्जा, पनबिजली, सौर ऊर्जा से
हम हमारी यात्रा को यहाँ विराम नहीं दे सकते
यह कभी न खत्म होने वाली है,
जब तक वायु प्रदूषण नहीं रुकता है।

❁❁❁

दस्तूर दुनिया के

श्रीमती सुधा पाण्डेय
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

जब रिश्ते नाते बिखर गये,
गैरों में फिर हम चलते हैं।
जब सुनने वाला कोई नही,
फिर खत्म कहानी करते हैं।
राह बनाया बड़े जतन से
काँटो को हटाया पलकों से।
जब घर तक उनको आना नहीं,
तब बन्द दरवाजा करते हैं।
कहने को बहारें अब भी हैं,
रंगीन नजारे अब भी हैं।
पर साथ नही देने वाला,
तो तनहा अकेले चलते हैं।
जी कर भी इतने बरसों में
समझे दस्तूर न दुनिया के
जब मिलता नही सुकून यहाँ
तो उस दुनिया में चलते हैं।

गजल

प्यार से दिल भरा हो,
और शरारत आंख में।
खूब सूरत जीभ से फिर
मुँह चिढ़ाना है गजल।
खोये–खोये से लगते हैं,
पास आते हैं जब।
और झाँक कर खिड़की से,
मुस्कुराना है गजल।
खुद सदा देखा करें
पर दूसरे देखें नहीं।
यदि मिली आँख से आँख
तो तिलमिलाना है गजल।
लाख पहरे लगें हों तब भी
मानता कब है ये दिल
छुप–छुप कर चुलबुली नजरों को
मिलाना है गजल
दूरियों में शिकायत ही
नहीं रहती है कभी
पास आकर बाहों में
समा जाना है गजल।
बिना वजह खामोशी क्यों
अपने दिल को मारकर
दिल में कुछ आ ही गया तो
साफ कहना है गजल।

लेखक परिचय

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
डॉ. आर.एस. रावत वैज्ञानिक प्रभारी जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग		**श्री वी.आर.एस. रावत** सलाहकार, पारितंत्र सेवाएं सुधार परियोजना जैवविविधता एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग	
डॉ. मनीष कुमार वैज्ञानिक–'बी'		**श्री अनूप सिंह चौहान** सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी	
श्री अवनीश कुमार हिन्दी अनुवादक (अनुबंध)		**श्री यशपाल सिंह बिष्ट** हिन्दी अनुवादक (अनुबंध)	

वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
श्री एन.बाला वैज्ञानिक–'एफ' वन पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग		**डॉ. अनूप चंद्रा** वैज्ञानिक –'ई' वनस्पति विज्ञान, प्रभाग	
श्री रामबीर सिंह वैज्ञानिक–'डी'		**डॉ. बी.एम. डिमरी** वैज्ञानिक–'डी' वन पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग	

डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल
वैज्ञानिक–'डी'
वन पारिस्थितिकी एवं
जलवायु परिवर्तन प्रभाग

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा
वैज्ञानिक–'बी'
वनस्पति विज्ञान, प्रभाग

डॉ. के.पी. सिंह
वैज्ञानिक–'बी'
प्रचार एवं सम्पर्क कार्यालय

सुश्री मनीषा शर्मा
शोध अध्येता
वन अनुसंधान संस्थान
देहरादून

श्री सुशील भट्टाराई
तकनीशियन
वन पारिस्थितिकी एवं
जलवायु परिवर्तन प्रभाग

श्रीमती सुधा पाण्डेय
धर्मपत्नी डॉ. वी.पी. पाण्डेय
स.मु.त.अ.,
व.प.एवं. ज.प., प्रभाग

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

नाम एवं पता	फोटो

डॉ. राजेश कुमार मिश्र
अनुसंधान सहायक–I
संगणक एवं सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो

श्री एस.एल. मीणा
वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
वन संवर्धन एवं वन प्रभाग

श्रीमती अनुराधा भाटी
पुस्तकालयाध्यक्ष

श्री शैलेन्द्र सिंह राठौड़
तकनीशियन
वन संवर्धन एवं वन प्रभाग

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बेंगलुरू

नाम एवं पता	फोटो

श्री पंकज के. अग्रवाल
विस्तार अधिकारी

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो

श्री अखिल कुमार
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
समूह समन्वयक अनुसंधान प्रभाग

डॉ जोगिंदर सिंह
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

श्री दुष्यंत कुमार
तकनीकी अधिकारी
वनवर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग

श्री ज्वाला प्रसाद

श्री कुलदेश कुमार

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

नाम एवं पता	फोटो
श्री एम.विनयचन्द्रन आशुलिपिक ग्रेड – I	

वन जैवविविधता संस्थान, हैदराबाद

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो
श्री प्रवीण एच. चव्हाण वैज्ञानिक–'जी'		**श्री पंकज सिंह** वैज्ञानिक –'बी'	
शैक सय्यद जॉन परियोजना सहायक		**श्री शिव सत्या प्रसाद** डाटा एंट्री ऑपरेटर	

सतपुड़ा के घने जंगल

सतपुड़ा के घने जंगल।
नींद मे डूबे हुए से
ऊँघते अनमने जंगल।

झाड ऊँचे और नीचे,
चुप खड़े हैं आँख मीचे,
घास चुप है, कास चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है।
बन सके तो धँसो इनमें,
धँस न पाती हवा जिनमें,
सतपुड़ा के घने जंगल
ऊँघते अनमने जंगल।

अजगरों से भरे जंगल।
अगम, गति से परे जंगल
सात-सात पहाड़ वाले,
बड़े छोटे झाड़ वाले,
शेर वाले बाघ वाले,
गरज और दहाड़ वाले,
कम्प से कनकने जंगल,
नींद मे डूबे हुए से
ऊँघते अनमने जंगल।

धँसो इनमें डर नहीं है,
मौत का यह घर नहीं है,
उतर कर बहते अनेकों,
कल-कथा कहते अनेकों,
नदी, निर्झर और नाले,
इन वनों ने गोद पाले।
लाख पंछी सौ हिरन-दल,
चाँद के कितने किरन दल,
झूमते बन-फूल, फलियाँ,
खिल रहीं अज्ञात कलियाँ,
हरित दूर्वा, रक्त किसलय,
पूत, पावन, पूर्ण रसमय
सतपुड़ा के घने जंगल,
लताओं के बने जंगल।

– भवानीप्रसाद मिश्र

❄ ❄ ❄